[2020] 2 उम. नि. प. 163

सुशीला अग्रवाल और अन्य

बनाम

राज्य (राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र, दिल्ली) और एक अन्य

[2017 की विशेष इजाजत याचिका दांडिक सं. 7281-7282]

29 जनवरी, 2020

न्यायमूर्ति अरूण मिश्रा, न्यायमूर्ति (सुश्री) इंदिरा बनर्जी, न्यायमूर्ति विनीत सरन, न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 438, 439 और 437(3) – अग्रिम जमानत का आदेश – कालावधि – जहां किसी अपराध के कारित होने के संबंध में किसी व्यक्ति को उसकी गिरफ्तारी की युक्तियुक्त आशंका के आधार पर उसके पक्ष में अग्रिम जमानत का आदेश अनुदत्त किया जाता है, वहां पुलिस द्वारा पहले उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए और फिर अग्रिम जमानत के आदेश की अनुपालना में उसे जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए और ऐसे आदेश की अवधि को अनिवार्य रूप से एक नियत समय-सीमा के लिए निर्बंधित नहीं किया जाना चाहिए तथा ऐसा आदेश, अभियुक्त के आचरण पर निर्भर करते हुए आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् भी विचारण की समाप्ति तक जारी रह सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438, 439 और 437(3) – अग्रिम जमानत का आदेश – शर्तें अधिरोपित किया जाना – यद्यपि अग्रिम जमानत का आदेश अनुदत्त करते समय, न्यायालय इस अनुतोष को समय-सीमा में सीमित करने के लिए शर्तें अधिरोपित करने हेतु आबद्ध नहीं है किंतु अपराध की गंभीरता, अभियुक्त व्यक्ति की भूमिका, साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने और न्याय से बचकर भागने की संभाव्यता पर विचार करते हुए, न्यायालय धारा 437(3) में उपवर्णित प्रसामान्य

शर्तों के अतिरिक्त मामले के विशिष्ट और विचित्र तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र हैं किंतु ऐसी शर्तें नैमित्तिक रीति में अनिवार्य रूप से अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438 – अग्रिम जमानत का आदेश – पर्यवसान – न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन किए जाने या आरोप विरचित किए जाने पर प्रसामान्य तौर पर अग्रिम जमानत के आदेश का पर्यवसान नहीं होता है, अपितु विचारण की समाप्ति तक जारी रह सकता है किंतु यदि मामले में कोई विशेष या विचित्र विशेषताएं है तो न्यायालय अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करने के लिए स्वतंत्र होगा ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438 [सपठित साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 27] – अग्रिम जमानत का आदेश – पुलिस की अन्वेषण करने की शक्ति – अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी रीति में, पुलिस या अन्वेषक अधिकरण को अभियुक्त के विरुद्ध आरोपों का अन्वेषण करने के लिए निर्बंधित नहीं करता है और किसी वस्तु की बरामदगी या तथ्य के प्रकटीकरण के लिए ऐसे व्यक्ति को सीमित अभिरक्षा में लिया जा सकता है और ऐसी स्थिति में, अभियुक्त को अलग से नियमित जमानत लेना आवश्यक नहीं है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438 और 439(2) – अग्रिम जमानत का आदेश – जमानत का रद्दकरण – जहां अभियुक्त द्वारा अग्रिम जमानत में अधिरोपित की गई शर्तों में से किसी शर्त का अतिक्रमण किया जाता है, तो पुलिस या अन्वेषक अधिकरण जमानत के रद्दकरण के लिए संबंधित न्यायालय में समावेदन करने के लिए स्वतंत्र है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 438 – अग्रिम जमानत का आदेश – प्रयोज्यता – अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाले न्यायालय द्वारा ऐसा सर्वग्राही आदेश (ब्लैंकेट आर्डर) पारित नहीं करना चाहिए जिससे अभियुक्त अनिश्चित संरक्षा के अनुतोष का दावा कर सकता हो, अपितु ऐसा आदेश केवल उसी विनिर्दिष्ट घटना तक सीमित होना चाहिए जिसके संबंध में गिरफ्तारी की आशंका की गई है ।

अग्रिम जमानत की अवधि और उसके पर्यवसान के विषय में उच्चतम न्यायालय की अलग-अलग संख्या की भिन्न-भिन्न पीठों के परस्पर-विरोधी मतों को, विशिष्ट रूप से एक ओर श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम पंजाब राज्य, सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे बनाम महाराष्ट्र राज्य, भदरेश बिपिनभाई सेठ बनाम गुजरात राज्य वाले मामलों में तथा दूसरी ओर सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख बनाम महाराष्ट्र राज्य, जिसका बाद में के. एल. वर्मा बनाम राज्य और एक अन्य, सुनीता देवी बनाम बिहार राज्य, निर्मलजीत कौर बनाम मध्य प्रदेश राज्य, एचडीएफसी बैंक लि. बनाम जे. जे. मेनन और सतपाल सिंह बनाम पंजाब राज्य वाले मामलों में अनुसरण किया गया, ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा इस विशेष इजाजत याचिका को बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विनिश्चय करने के लिए निर्देशित किया गया । उच्चतम न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा निर्देश का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित (न्या. एम. आर. शाह) – दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के अधीन "अग्रिम जमानत" प्रदान करने की शक्ति केवल सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में निहित है । अत: अंततोगत्वा संबंधित न्यायालय को ही "अग्रिम जमानत" के आवेदन पर विचार करना होता है और "अग्रिम जमानत" प्रदान करते समय अंततोगत्वा संबंधित न्यायालय को ही "अग्रिम जमानत" की सीमित अवधि सहित शर्तें अधिरोपित करनी होती हैं और यह उन प्रक्रमों पर निर्भर करता है, जिन पर अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया जाता है । जिस व्यक्ति के पक्ष में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन कोई गिरफ्तारी-पूर्व आदेश किया जाता है, उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए । तथापि,, जब एक बार गिरफ्तारी-पूर्व जमानत/अग्रिम जमानत का आदेश है, तो जब भी उसे गिरफ्तार किया जाता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए । अन्यथा, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन गिरफ्तारी-पूर्व जमानत और धारा 437 और 439 के अधीन जमानत के बीच कोई विभेद या फर्क नहीं रह जाता है । धारा 438 के अधीन गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के आदेश और धारा 437 और 439 के अधीन जमानत आदेश के बीच एकमात्र फर्क उन प्रक्रमों का है, जिस पर

जमानत का आदेश पारित किया जाता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जमानत आदेश उसकी गिरफ्तारी से पूर्व और उसकी गिरफ्तारी की प्रत्याशा में होता है तथा 437 और 439 के अधीन जमानत का आदेश किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् होता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के पठन मात्र से यह दर्शित होता है कि इस धारा की भाषा में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे यह दर्शित होता हो कि धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत समयाबद्ध होनी चाहिए । (पैरा 7.1)

यह विवादग्रस्त नहीं किया जा सकता है कि गुरबक्श सिंह सिब्बिया वाले मामले का विनिश्चय एक संविधान न्यायपीठ का विनिश्चय है जो तब तक आबद्धकर है जब तक इसे संविधान न्यायपीठ की अपेक्षा एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अपास्त नहीं किया जाता है । इसलिए गुरबक्श सिंह सिब्बिया वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय और इसमें उद्धृत सुसंगत मताभिव्यक्तियों पर विचार करते हुए, सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय, जहां तक इसमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आदेश की कालावधि को कम नहीं किया जा सकता है, गुरबक्श सिंह सिब्बिया वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए सही विधि नहीं है । सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय भी, जिसमें यह चरम दृष्टिकोण अपनाया गया है कि "अग्रिम जमानत" का आदेश आवश्यक रूप से समय-सीमा में सीमित किया जाना चाहिए, एक उचित विधि नहीं है और गुरबक्श सिंह सिब्बिया वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध और पूर्णरूपेण विपरीत है, जो कि एक संविधान न्यायपीठ का निर्णय है । इस प्रकार, गुरबक्श सिंह सिब्बिया वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ की मताभिव्यक्तियों पर विचार करते हुए, न्यायालय जमानत के आदेश के प्रवर्तन को केवल आदेश के अंतर्गत आने वाले मामले की बाबत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् एक संक्षिप्त अवधि तक के लिए सीमित कर सकेगा, यदि ऐसा

करने के कारण हों, और आवेदक को ऐसे मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् एक युक्तियुक्त संक्षिप्त अवधि के भीतर संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन जमानत का आदेश अभिप्राप्त करने के लिए निदेश दे सकेगा । संविधान न्यायपीठ ने यह भी मत व्यक्त किया है कि इसका निरपवाद नियम के रूप से अनुसरण किए जाने की आवश्यकता नहीं है । यह भी मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रसामान्य नियम आदेश के प्रवर्तन को किसी समयावधि के संबंध में सीमित न करने का होना चाहिए । इस न्यायालय की यह राय है कि संबंधित न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश प्रदान करते समय शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं, जिसके अंतर्गत समयावधि के संबंध में आदेश के प्रवर्तन को सीमित करना भी है, यदि परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक हो, अति विशिष्ट रूप से उस प्रक्रम पर, जिस प्रक्रम पर "अग्रिम जमानत" के लिए आवेदन किया जाता है अर्थात् क्या आवेदन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने से पूर्व के प्रक्रम पर किया गया है या उस प्रक्रम पर जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की जाती है और अन्वेषण किया जा रहा है या उस प्रक्रम पर जब अन्वेषण पूर्ण हो गया है और आरोप पत्र फाइल किया गया है । तथापि,, प्रसामान्य नियम समयावधि के संबंध में आदेश को सीमित न करने का होना चाहिए । (पैरा 7.4 और 7.5)

(न्या. एस. रविन्द्र भट का सम्मत निर्णय)

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के उपबंधों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह सुझाव मिलता हो कि संसद् का आशय इसके प्रवर्तन को या तो समयावधि के संबंध में या उन अपराधों की प्रकृति के संबंध में निर्बंधित करना था, जिनकी बाबत आवेदक को जमानत के लिए इनकार किया जाना चाहिए, या कौन सी विशेष बातें लागू होंगी । इस संदर्भ में, यह स्मरण करना सुसंगत है कि न्यायालय कानून के स्पष्ट और शाब्दिक निर्वचन से निकलने वाली प्रकट या स्पष्ट असंगति के अभाव में किसी उपबंध में निर्बंधन या शर्तें अधिरोपित करने से बचेगा । सलाउद्दीन वाले मामले के विनिश्चय से आरंभ होकर इसी पंक्ति के विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा अन्वेषण और जांच के प्रक्रमों तथा

अपराध की प्रकृति और गंभीरता विषयक सरोकारों पर बल देते हुए किए गए संकुचित निर्वचन से न्यायालयों को अन्यथा उपलब्ध विस्तार और शक्ति तथा विवेकाधिकार को कम करने वाला नहीं समझना चाहिए । परिसीमाएं विहित करने में इस न्यायालय का जोखिम यह है कि वे ऐसे अनम्य नियम या आदेश-पत्र बन जाते हैं जिनसे विचलन नहीं किया जा सकता । इसके बजाय, यह कहना अधिक सुरक्षित होगा कि जहां कहीं ऐसी परिस्थितियां और ऐसे तथ्य हैं जो अपराध की गंभीरता को इंगित करते हुए विचित्र कठिनाइयां या जटिलताएं प्रस्तुत करते हैं, वहां न्यायालय (जिसे धारा 438 के अधीन आवेदनों पर विचार करना है) आवश्यकतापूर्ण निर्बंधन – चाहे ये समय को लेकर हों अथवा अन्वेषण या जांच के प्रक्रम पर हों, अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र हैं । इन विचित्र शर्तों में से प्रत्येक शर्त ऐसे किसी मामले की प्रस्तुत की गई परिस्थितियों में अधिरोपित की जा सकती हैं जिसकी वे सुभिन्न या विशेष विशेषताएं हों । किंतु वे शर्तें सभी मामलों में सदैव निरपवाद रूप से अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं । दूसरे शब्दों में, यदि यह न्यायालय अधिरोपित करने के लिए उन शर्तों की रचना करने लगा और धारा 438 में उनके होने का अर्थ लगाने लगा जो इस धारा में अभियुक्त रूप से उपबंधित नहीं की गई हैं, तो संकट यह होगा कि कई आवेदक, जो अनुतोष के लिए अन्यथा हकदार हो सकते थे, पूर्ण रूप से इससे वंचित हो जाएंगे । उदाहरण के लिए, अपराध या अपराधों के किसी प्रवर्ग, जहां न्यायालयों को अनुतोष अनुदत्त नहीं करना चाहिए था, का ऐसा वर्गीकरण करने पर, जिसमें उनमें से कोई विशेष बर्ताव करने की अपेक्षा करता है, इसका यह अर्थ होगा कि अभियुक्त की भूमिका और दर्शित की गई सामग्री (चाहे पर्याप्त है या नहीं) पर ध्यान दिए बिना न्यायालय शक्तिहीन और अन्यथा कानून द्वारा दिए गए विवेकाधिकार के आयाम से वंचित हो जाएंगे । (पैरा 61 और 65)

जहां तक राज्य और संघ की ओर से अभिव्यक्त किए गए इस सरोकार का संबंध है कि अशर्त आदेशों (अर्थात् जो एक विशिष्ट समयावधि से असंबद्ध हैं) का परिणाम यह होगा कि अभियुक्त अन्वेषण अधिकारी या प्राधिकारी के साथ सहयोग नहीं करेगा, या ऐसी वस्तुओं की बरामदगी में सहायता करने के लिए जो अभियुक्त को आलिप्त

करती हो (और इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रयुक्त की जा सके), अभियोजन पक्ष को कथन करने में आनाकानी करेगा, यह न्यायालय महसूस करता है कि ऐसे दृष्टिकोण अस्पष्ट हैं और स्पष्ट रूप से पूर्वकल्पित धारणाओं पर आधारित हैं । यदि अन्वेषण के अनुक्रम में अभियुक्त द्वारा सहयोग नहीं किया जाता है, तो न्यायालय की सहायता की ईप्सा करने का उपचार विद्यमान है । (पैरा 66)

उपरोक्त कारणों से, इस न्यायपीठ को किए गए निर्देश में प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि धारा 438(4) में वर्णित अपराधों के सिवाय, स्वत: ऐसा कोई अपराध नहीं है जो धारा 438 के क्षेत्र से अपवर्जित हो जाता हो । दूसरे शब्दों में, अग्रिम जमानत, सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सभी अपराधों के संबंध में अनुदत्त की जा सकती है । साथ ही साथ, यदि किसी विशेष विधि या कानून में ऐसे निर्देशन हैं, जो धारा 438(1) के अधीन अनुतोष को अपवर्जित करते हैं, तो उन पर सम्यक् रूप से विचार किया जाएगा । साथ ही, क्या किसी प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जहां गंभीर प्रकृति के अपराधों के कारित करने के संबंध में अभिकथन किए गए हैं, कतिपय विशेष शर्तों के साथ अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाए या नहीं, यह एक विवेकाधिकार का विषय है, जिसका प्रयोग अपराधों की प्रकृति, दर्शित किए गए तथ्यों, आवेदक की पृष्ठभूमि, उसके न्याय से भागने (या न भागने) की संभावना; अन्वेषक अभिकरण या पुलिस के साथ सहयोग करने या सहयोग न करने की संभावना आदि को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । ऐसी कोई अनम्य समय-सीमा नहीं हो सकती है, जिसके लिए अग्रिम जमानत का आदेश जारी रह सकता है । अत: यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख, के. एल. वर्मा, निर्मल जीत कौर, सतपाल सिंह, अदरी धरनदास, एचडीएफसी बैंक, जे. जे. मेनन और नरेश कुमार यादव वाले मामलों में सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय के बारे में अभिव्यक्त यह मत कि वे एक सीमित अवधि के लिए अग्रिम जमानत अनुदत्त करने, या अन्वेषण के अनुक्रम की प्रतीक्षा करने के लिए आबद्ध हैं, जिससे "सामान्य न्यायालय" की उपेक्षा न की जा सके या कतिपय प्रकार के गंभीर अपराधों, जिनमें आर्थिक अपराध भी हैं, आदि में प्रसामान्यत:

अग्रिम जमानत अनुदत्त नहीं की जानी चाहिए, उचित विधि नहीं हैं । उन मताभिव्यक्तियों को, जिनसे यह उपदर्शित होता है कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय अमुक समय से संबंधित या अन्वेषणकारी घटना से संबंधित आवश्यक रूप से अधिरोपित की जानी चाहिए, उलटा जाता है । इसी प्रकार, महत्रे वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां कि "न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 की परिधि और व्याप्ति पर ऐसे निर्बंधन अधिरोपित नहीं करने चाहिएं, जो विधान-मंडल द्वारा अनुध्यात नहीं किए गए हैं; न्यायालय कानून के उपबंध को इसका निर्वचन करने की आड़ लेकन पुन: नहीं लिख सकता है," अति व्यापक हैं और उचित विधि नहीं समझा जा सकता है । यह कहना एक बात है कि विधि की दृष्टि से, सामान्यत: विशेष शर्तें [जो धारा 437(3) के साथ पठित धारा 438(2) में वर्णित नहीं हैं] अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं; यह कहना पूर्ण रूप से अलग बात है कि विशिष्ट दृष्टांतों में, अपराध की प्रकृति, अभियुक्त की भूमिका, या कुछ विचित्र विशेषता को ध्यान में रखते हुए विशेष शर्तें अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं । सिब्बिया वाले मामले में निर्णय स्वत: यह एक नज़ीर है कि ऐसी शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं, किंतु नैमित्तिक या सामान्य रीति में नहीं और यह कि ऐसी शर्तें इसके पश्चात् एक अनम्य "सिद्धांत" बन जाती हैं जिनका न्यायालयों को अनुसरण करना होगा । अत: न्यायालय अपराध को, विचित्र तथ्यों, अपराधी की भूमिका, उससे संबंधित परिस्थितियों, उसके द्वारा न्याय (या ऋजु अन्वेषण) को बिगाड़ने की संभावना, न्याय से बचने या भागने की संभावना को ध्यान में रखते हुए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग विशेष शर्तें अधिरोपित करने के लिए कर सकते हैं । ऐसी शर्तें मामला-दर-मामला के आधार पर तथा धारा 438 के अधीन आवेदन अभिग्रहण करने वाले न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करने पर अधिरोपित की जानी चाहिएं । निष्कर्षत:, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि ऐसी शर्तें अधिरोपित करना जो जमानत अनुदत्त करते समय धारा 437(2) में उल्लिखित हैं, सामान्य हैं; समान रूप से, पुलिस द्वारा यह मामला बनाने की दशा में कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन किसी प्रकटीकरण होने की संभाव्यता है, जमानत पर छोड़ा गया व्यक्ति प्रकटीकरण को सुकर बनाने के लिए पुलिस अभिरक्षा में लिए जाने का दायी होगा । अन्य शर्तें, जो निर्बंधनकारी हैं, आज्ञापक नहीं हैं;

न ही कोई अत्यावश्यक नियम है कि वे आवश्यक रूप से अधिरोपित की जानी चाहिए या यह कि अग्रिम जमानत का आदेश एक समयावधि के लिए होगा, या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने तक या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन कोई कथन अभिलिखित करने आदि तक विधिमान्य होगा । अन्य शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं, यदि मामले के तथ्यों में ऐसा करना आवश्यक हो । (पैरा 68 और 69)

यहां प्रश्न यह है कि क्या विधि में कोई ऐसा उपबंध है जिसमें स्वयमेव यह अपेक्षित हो कि आरोप पत्र के फाइल होने या न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन करने (या यहां तक कि आरोप पत्र में उस अपराध के परिवर्धन पर जिसके लिए जमानत पर आवेदक नए सिरे से अभियुक्त है) के उपरांत उसकी स्वाधीनता समपहृत हो जानी चाहिए और यह कि उसे अभ्यर्पण करने तथा नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए कहना चाहिए । धारा 438 के अधीन शक्ति के विस्तार और आयाम के बारे में प्रथम प्रश्न के उत्तर में की गई मताभिव्यक्तियां यहां भी समान रूप से सुसंगत हैं । धारा 167(2) के अधीन "समझी गई जमानत" की अग्रिम जमानत के साथ अनुरूपता इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करती है कि बाद में आरोप पत्र फाइल होने की मात्र घटना अभियुक्त को अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती है । वस्तुतः, दिलचस्प रूप से, वास्तव में, यदि वहां आरोप पत्र फाइल किया जाता है जहां अभियुक्त अग्रिम जमानत पर है, तो स्वाभाविक उलझन यह होगी कि अन्वेषक अभिकरण या पुलिस के पास उसकी अभिरक्षा की अपेक्षा करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि उसके व्यवहार से ऐसा कदम उठाने की अपेक्षा करने वाली कोई बात नहीं रही थी । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त, जिसे अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, तब भी स्वछंद बना रहेगा, जब आरोप पत्र फाइल किया जाता है, इसकी स्वाभाविक उलझन यह है कि न्यायालय के पास यह निदेश देने का कोई अवसर नहीं आता है कि उसे गिरफ्तार किया जाए और यह भी कि उसने अन्वेषण में सहयोग नहीं किया था । तथापि,, साथ ही साथ, अन्वेषण के दौरान किसी समय पर यदि धारा 438(2) के साथ पठित धारा 437(3) के अधीन अधिरोपित शर्तों में से किसी शर्त का उल्लंघन करने

या मामले के प्रस्तुत तथ्यों में अधिरोपित किसी अन्य शर्त का अतिक्रमण करने के लिए न्यायालय के मध्यक्षेप के लिए कोई अवसर उद्भूत होता है, तो सदैव धारा 439(2) के अधीन आश्रय लिया जा सकता है । धारा 438(3) में यह उपबंधित है कि जब किसी व्यक्ति को अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, यदि बाद में ऐसे व्यक्ति को "ऐसे अभियोग के आधार पर" पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह जमानत देने के लिए इच्छुक है, "तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चित करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा" । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाला आदेश भी – जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, और कई पूर्ववर्ती विनिश्चयों में भी उल्लेख किया गया है, इस धारा 438 के अधीन एक "निदेश" होता है "कि ऐसी गिरफ्तारी की दशा में" आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाए । अत: जब किसी अभियुक्त को वास्तव में जमानत अनुदत्त की जाती है और धारा 438(2) में दी गई शर्तें उसे गिरफ्तारी की दशा में "छोड़ देने" के निदेश के भाग के रूप में सम्मिलित की जाती हैं, तो सभी आवश्यक शर्तें जिनका वह पालन करने के लिए आबद्ध है, विद्यमान हैं । धारा 438(3) में ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी की दशा में उठाए जाने वाले कदमों को रेखांकित किया गया है, जिसे धारा 438(1) के अधीन अनुतोष अनुदत्त की गई है । न्यायालय द्वारा अधिरोपित किसी या सभी शर्तों के अननुपालन की दशा में, संबंधित अभिकरण या पुलिस धारा 439(2) के अधीन न्यायालय से निदेश प्राप्त करने की ईप्सा कर सकते हैं । (पैरा 70 और 71)

जब तक अभियुक्त के व्यवहार – उसके न्याय से भागने, या न्यायालय के प्राधिकार या अधिकारिता की अपवंचना करने, या उसके द्वारा साक्षियों को अभित्रस्त करने, या उन्हें अभित्रस्त करने की कोशिश करने, या अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय अधिरोपित किसी शर्त का अतिक्रमण करने का सुझाव देने वाली परिस्थितियां प्रतिकूल न हों, विधि ऐसे व्यक्ति से उस पर विचारण के लिए समन तामील होने के

उपरांत न्यायालय में अभ्यर्पण करने की अपेक्षा नहीं करती है । अधिरोपित की गई शर्तों की अनुपालना के अधीन रहते हुए, किसी व्यक्ति को दी गई अग्रिम जमानत विचारण की समाप्ति तक जारी रह सकती है । यह इस न्यायपीठ को निर्देशित प्रश्न सं. 2 का उत्तर है । (पैरा 76)

यह न्यायालय निर्देश का निम्नलिखित उत्तर देता है –

(1) प्रश्न सं. 1 के संबंध में, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई संरक्षा सदैव या सामान्यतया एक नियत अवधि के लिए सीमित नहीं की जानी चाहिए; यह अभियुक्त के पक्ष में समय के बारे में किसी निर्बंधन के बिना लागू रहनी चाहिए । धारा 438(2) के साथ पठित धारा 437(3) के अधीन प्रायिक या मानक शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिएं; यदि किसी अपराध या दोष के संबंध में विचित्र विशेषताएं (जैसे गंभीरता या घोरता आदि) हैं, तो न्यायालय कोई समुचित शर्त (जिसमें राहत की नियत प्रकृति, या इसका किसी घटना से बंधा होना या समयाबद्ध होना आदि सम्मिलित है) अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र है ।

(2) इस न्यायालय को निर्देशित द्वितीय प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि अग्रिम जमानत की कालावधि साधारणतया उस समय और प्रक्रम पर समाप्त नहीं हो जाती है जब न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन किया जाता है, या आरोप विरचित करने के पश्चात्, अपितु विचारण की समाप्ति तक भी जारी रह सकती है । तथापि,, यदि ऐसी विशेष या विचित्र विशेषताएं हैं जिनमें न्यायालय के लिए अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करना आवश्यक है, तो न्यायालय ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है । (पैरा 77)

उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट किया जाता है कि न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आवेदनों पर विचार करते हुए निम्नलिखित बातों को मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में ध्यान में रखना चाहिए : (क) जैसा कि सिब्बिया वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी की आशंका है और अग्रिम जमानत के लिए न्यायालय में समावेदन करता है, तो उसकी आशंका (गिरफ्तारी की) किसी विनिर्दिष्ट अपराध या विशिष्ट अपराधों से संबंधित सटीक तथ्यों (और न कि अस्पष्ट या

साधारण अभिकथनों) पर आधारित होनी चाहिए । अग्रिम जमानत के लिए आवेदनों में अपराध से संबंधित स्पष्ट और आवश्यक तथ्य और आवेदक या आवेदिका को क्यों अपनी गिरफ्तारी की युक्तियुक्त रूप से आशंका है, तथा उसका तथ्यों का वृत्तांत अंतर्विष्ट होने चाहिएं । ये तथ्य उस न्यायालय के लिए महत्वपूर्ण हैं जो आवेदन, भय या आशंका की सीमा और युक्तियुक्तता, इसकी घोरता या गंभीरता और किसी शर्त की समुचितता पर विचार कर रहा है जो अधिरोपित की जा सकती है । यह एक आवश्यक शर्त नहीं है कि आवेदन केवल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने के पश्चात् किया जाए; यह पहले किया जा सकता है जबकि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो । (ख) न्यायालय, जिसके समक्ष धारा 438 के अधीन आवेदन फाइल किया जाता है, भय (गिरफ्तारी के) की गंभीरता पर निर्भर करते हुए सावधानी के अध्युपाय के रूप में लोक अभियोजक को, यहां तक कि सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय भी, सूचना जारी कर सकता है और तथ्य अभिप्राप्त कर सकता है । (ग) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 न्यायालयों को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल हो जाने, या अन्वेषण या जांच आदि के दौरान पुलिस द्वारा किसी साक्षी का कथन अभिलिखित किए जाने पर राहत को समय के रूप में सीमित करने के लिए शर्तें अधिरोपित करने के लिए बाध्य या आबद्ध नहीं करती हैं । आवेदन (अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए) पर मनन और विचार करते समय न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, उसके द्वारा अन्वेषण के अनुक्रम पर प्रभाव डालने या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने (साक्षियों को अभित्रस्त करने सहित) की संभाव्यता, न्याय से भागने (जैसे कि देश छोड़ना) की संभाव्यता आदि पर विचार करना होता है । न्यायालयों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(3) में उल्लिखित शर्तें [धारा 438(2) के फलस्वरूप] अधिरोपित करना न्यायोचित होगा – और अधिरोपित करनी चाहिएं । अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित करने की आवश्यकता पर मामला-दर-मामला आधार पर और राज्य या अन्वेषक अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री पर निर्भर करते हुए विचार किया जाएगा । ऐसी विशेष या अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित की जा सकेंगी यदि मामले या मामलों

में आवश्ययकता हो, किंतु सभी मामलों में नैमितिक रीति में अधिरोपित नहीं की जानी चाहिए । इसी प्रकार, ऐसी शर्तें जो अग्रिम जमानत को सीमित करती हों, अधिरोपित की जा सकती हैं यदि किसी मामले या मामलों के तथ्यों में वे अपेक्षित हों, तथापि,, ऐसी सीमित करने वाली शर्तें अनिवार्य रूप से अधिरोपित नहीं की जा सकेंगी । (घ) न्यायालयों को यह निर्धारण करते समय कि अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाए या इससे इनकार किया जाए, अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक द्वारा निभाई गई भूमिका और मामले के तथ्यों जैसी बातों से साधारणतया मार्गदर्शित होना चाहिए । जमानत अनुदत्त की जाए या नहीं, एक विवेकाधिकार का विषय है; समान रूप से, क्या किसी प्रकार की विशेष शर्तें अधिरोपित की जानी हैं (या अधिरोपित नहीं की जानी हैं) और यदि अधिरोपित की जानी हैं तो यह मामले के तथ्यों पर निर्भर करती हैं और न्यायालय के विवेकाधिकार के अध्यधीन होती हैं । (ङ) अनुदत्त की गई अग्रिम जमानत अभियुक्त के आचरण और व्यवहार पर निर्भर करते हुए आरोप पत्र फाइल होने के पश्चात् विचारण की समाप्ति तक जारी रह सकती है । साथ ही, अग्रिम जमानत के आदेश सर्वग्राही नहीं होने चाहिए, जिसका अर्थ यह है कि ऐसे आदेश से अभियुक्त इस बात के लिए समर्थ नहीं होना चाहिए कि वह आगे अपराध कारित करे और राहत का दावा न करे । यह केवल उसी अपराध या घटना तक सीमित होना चाहिए जिस किसी विनिर्दिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका की गई है । यह आदेश किसी ऐसी भावी घटना के संबंध में लागू नहीं हो सकता है जिसमें किसी अपराध का कारित होना अंतर्वलित हो । (च) अग्रिम जमानत के आदेशों से किसी रीति में पुलिस या अन्वेषक अभिकरण के उस व्यक्ति के विरुद्ध आरोपों का अन्वेषण करने के अधिकार या कर्तव्य सीमित या निर्बंधित नहीं होते हैं, जिसने गिरफ्तारी-पूर्व जमानत की ईप्सा की है और अनुदत्त की गई है । (छ) अन्वेषण करने वाले प्राधिकारी की अपेक्षाओं को सुकर बनाने के लिए "सीमित अभिरक्षा" या "समझी गई अभिरक्षा" के संबंध में सिब्बिया वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां, किसी ऐसी वस्तु की बरामदगी या किसी तथ्य के पता चलने की स्थिति में जो ऐसी घटना के दौरान किए गए कथन अर्थात् (समझी गई अभिरक्षा) से संबंधित है, धारा 27 के

उपबंधों को पूरा करने के प्रयोजनों के लिए पर्याप्त होंगी । ऐसी स्थिति में, अभियुक्त को अलग से अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए कहने का कोई प्रश्न (या आवश्यकता) नहीं है । सिब्बिया वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि "यदि और जब अवसर उद्भूत होता है अभियोजन पक्ष के लिए उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उल्लिखित सिद्धांत का अवलंब लेकर जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में पता चले तथ्यों के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के फायदे का दावा करना संभव हो सकेगा ।" (ज) पुलिस या अन्वेषक अभिकरण किसी निबंधन का अतिक्रमण जैसे कि फरार होने, अन्वेषण के दौरान असहयोग, प्रवंचना करना, अन्वेषण या विचारण के परिणाम को प्रभावित करने की दृष्टि से साक्षियों को अभित्रस्त या उत्प्रेरित करना आदि की स्थिति में अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए धारा 439(2) के अधीन निदेश के लिए उस संबंधित न्यायालय में समावेदन करने के लिए स्वतंत्र है, जिसने प्रथम बार में अग्रिम जमानत अनुदत्त की थी । इस संदर्भ में ऐसा न्यायालय वह न्यायालय है जो प्रचलित नज़ीरों के अनुसार प्रथम बार में अग्रिम जमानत अनुदत्त करता है । (झ) जमानत अनुदत्त करने वाले आदेश की शुद्धता पर विचार राज्य या अन्वेषक अभिकरण की प्रेरणा पर अपीली या वरिष्ठ न्यायालय द्वारा किया जा सकता है और इसे इस आधार पर अपास्त किया जा सकता है कि जमानत अनुदत्त करने वाले न्यायालय ने तात्विक तथ्यों या निर्णायक परिस्थितियों पर विचार नहीं किया था । यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के निबंधनों के अनुसार "रद्दकरण" की कोटि में नहीं आता है । (ञ) महत्रे वाले मामले के निर्णय (और अन्य इसी प्रकार के विनिश्चयों) जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय निर्बंधनकारी शर्तें कतई अधिरोपित नहीं की जा सकती हैं, को उलटा जाता है । इसी प्रकार, सलाउद्दीन वाले मामले में के विनिश्चय और पश्चात्वर्ती विनिश्चयों (के. एल. वर्मा, निर्मल जीत कौर वाले मामले सहित) को, जिनमें यह कहा गया है कि ऐसी निर्बंधनकारी शर्तें या निबंधन जो अग्रिम जमानत को एक समयावधि तक सीमित करते हों, अवश्य अधिरोपित किए जाने चाहिएं उलटा जाता है । (पैरा 78)

अनसृत निर्णय
(न्या. एम. आर. शाह)

पैरा

[1981] [1981] 1 उम. नि. प. 1231= (1980) 2 एस. सी. सी. 565 :
श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया और अन्य बनाम **पंजाब राज्य** । 1, 2, 3, 6

निर्दिष्ट निर्णय

[2018] (2018) 4 एस. सी. सी. 303 :
सतपाल सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 1, 5

[2016] (2016) 1 एस. सी. सी. 152 :
भदरेश बिपिनभाई सेठ बनाम **गुजरात राज्य** ; 1

[2014] (2014) 2 एस. सी. सी. 1 :
ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 3.1

[2014] (2014) 8 एस. सी. सी. 273 :
अरनेश कुमार बनाम **बिहार राज्य** ; 3.1

[2011] (2011) 1 एस. सी. सी. 694 :
सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 1, 2, 3, 4, 6, 7

[2010] (2010) 1 एस. सी. सी. 679 :
एचडीएफसी बैंक लि. बनाम **जे. जे. मेनन** ; 1, 4, 5

[2005] (2005) 1 एस. सी. सी. 608 :
सुनीता देवी बनाम **बिहार राज्य** ; 1

[2004] (2004) 7 एस. सी. सी. 558 :
निर्मलजीत कौर बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** ; 1

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 649 :
एम. सी. अब्राहम बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 3.1

[2001] (2001) 5 एस. सी. सी. 453 :
उदय मोहनलाल आचार्य बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 5.1

[1998] (1998) 9 एस. सी. सी. 348 :
के. एल. वर्मा बनाम **राज्य और एक अन्य** ; 1

[1996] (1996) 1 एस. सी. सी. 667 :
सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख बनाम
महाराष्ट्र राज्य ; 1, 6

[1994] (1994) 4 एस. एस. सी. 260 :
जोगिन्द्र कुमार बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 3.1

[1977] [1977] 4 उम. नि. प. 752 =
(1976) 4 एस. सी. सी. 572 :
बाल चंद जैन बनाम **मध्य प्रदेश राज्य** । 2, 7

अनसृत निर्णय
(न्या. एस. रविन्द्र भट)

[1981] [1981] 1 उम. नि. प. 1231= (1980) 2
एस. सी. सी. 565 :
श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया और
अन्य बनाम **पंजाब राज्य** ; 3,

निर्दिष्ट निर्णय

[2019] (2019) 9 एस. सी. सी. 24 :
पी. चिदम्बरम बनाम **प्रवर्तन निदेशालय** ; 53

[2019] (2019) एस. सी. सी. ऑनलाइन (एस. सी.) 825 :
प्रदीप राम बनाम **झारखंड राज्य** ; 27

[2018] (2018) एस. सी. सी. ऑनलाइन (एस. सी.) 415 :
सतपाल सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 4

[2018] (2018) 3 एस. सी. सी. 22 :
दाताराम सिंह बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 17

[2018] (2018) 16 एस. सी. सी. 511 :
एक्स बनाम **तेलंगाना राज्य** ; 75

[2018] (2018) 8 एस. सी. सी. 475 :
अरविंद तिवारी बनाम **बिहार राज्य** ; 75

[2016] (2016) 1 एस. सी. सी. 152 :
भदरेश बिपिनभाई सेठ बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य** ; 1, 74

[2016] (2016) 1 एस. सी. सी. 146 :
सुधीर बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 75

[2014] (2014) 2 एस. सी. सी. 1 :
ललिता कुमारी बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 24

[2014] (2014) 8 एस. सी. सी. 273 :
अरनेश कुमार बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 24

[2012] (2012) 13 एस. सी. सी. 720 :
पदमाकर तुकाराम भावनागरे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 75

[2012] (2012) 4 एस. सी. सी. 379 :
जय प्रकाश सिंह बनाम **बिहार राज्य** ; 34, 47

[2011] (2011) 6 एस. सी. सी. 189 :
प्रकाश कदम और आदि-आदि बनाम **रामप्रसाद विश्वनाथ गुप्ता और एक अन्य** ; 78

[2011] (2011) 1 एस. सी. सी. 694 :
सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ; 4

[2010] (2010) 1 एस. सी. सी. 679 :
एचडीएफसी बैंक लिमिटेड बनाम **जे. जे. मेनन** ; 4, 10

[2009] (2009) 6 एस. सी. सी. 332 :
मिठाभाई पाशाभाई पटेल बनाम **गुजरात राज्य** ; 27

[2009] (2009) 8 एस. सी. सी. 325 :
सावित्री अग्रवाल बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य** ; 35

[2009] (2009) 10 एस. सी. सी. 652 :
हज़ारी लाल दास बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य** ; 74

[2008] (2008) 1 एस. सी. सी. 632 :
नरेश कुमार यादव बनाम **रविन्द्र कुमार** ; 4

[2005] (2005) 1 एस. सी. सी. 608 :
सुनीता देवी बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य** ; 4

[2005] (2005) 4 एस. सी. सी. 303 :
अदरी धरन दास बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ; 4

[2005] (2005) 8 एस. सी. सी. 21 :
जयप्रकाश, राज्य केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत बनाम **अमरमणि त्रिपाठी** ; 78

[2004] (2004) 7 एस. सी. सी. 558 :
निर्मलजीत कौर बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य** ; 4

[2003] (2003) 2 एस. सी. सी. 649 :
एम. सी. अब्राहम बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 24

[2003] (2003) 1 एस. सी. सी. 236 :
महंत चांद योगी बनाम **हरियाणा राज्य** ; 75

[2001] (2001) 4 एस. सी. सी. 638 :
मुरलीधरन बनाम **केरल राज्य** ; 36

[1998] (1998) 9 एस. सी. सी. 348 :
के. एल. वर्मा बनाम **राज्य और एक अन्य** ; 4, 9

[1997] (1997) 8 एस. सी. सी. 104 :
आंध्र प्रदेश राज्य बनाम **बिमल कृष्ण कुंडु** ; 36

[1996] (1996) 1 एस. सी. सी. 667 :
सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख बनाम
महाराष्ट्र राज्य ; 4, 8

[1995] (1995) 3 (सप्ली.) एस. सी. सी. 419 :
मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य बनाम
रामकिशन बालोथिया और एक अन्य ; 34

[1995] (1995) 1 एस. सी. सी. 349 :
दौलत राम बनाम **हरियाणा राज्य** ; **73**

[1994] (1994) 4 एस. सी. सी. 260 :
जोगिन्द्र कुमार बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ; 24

[1994] (1994) 3 एस. सी. सी. 440 :
प्रवर्तन निदेशालय बनाम **दीपक महाजन** ; 63

[1992] (1992) 4 एस. सी. सी. 272
असलम बाबालाल देसाई बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ; 21

[1987] [1987] 2 उम. नि. प. 855 =
(1987) 1 एस. सी. सी. 424 :
भारतीय रिजर्व बैंक बनाम **पियरलेस जनरल**
फाइनेंस एंड इंवेस्टमेंट कं. लि. और अन्य ; 62

[1978] [1978] 4 उम. नि. प. 966 =
(1978) 1 एस. सी. सी. 118 :
गुरचरण सिंह बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)** ; 20

[1978] [1978] 4 उम. नि. प. 1001 =
(1978) 1 एस. सी. सी. 240 :
गुडिकांति नरसिंहलू बनाम **लोक अभियोजक** ; 48

[1975] (1975) 2 एस. सी. सी. 810 :
हरियाणा राज्य और अन्य बनाम **संपूर्ण सिंह**
और अन्य ; 64

[1967] [1967] 1 एस. सी. आर. 77 :
चन्द्रमोहन बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य** ; 62

[1965] [1965] 3 एस. सी. आर. 854 :
वल्लभदास लीलाधर बनाम **सहायक सीमा-शुल्क कलेक्टर** ; 66

[1961] [1961] 1 एस. सी. आर. 14 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **देवमन उपाध्याय** । 66

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7281-7282.

2017 के जमानत आवेदन सं. 1415 में दिल्ली उच्च न्यायालय, नई दिल्ली के तारीख 25 जुलाई, 2017 और 2 अगस्त, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका ।

हाजिर होने वाले पक्षकारों की ओर से

सर्वश्री तुषार मेहता, महासालिसिटर, अमन लेखी, अपर महासालिसिटर, विक्रमजीत बनर्जी, अपर महासालिसिटर, बी. शेखर, (सुश्री) ऐश्वर्य भाटी, ज्येष्ठ अधिवक्तागण, अभय कुमार, विनीत कुमार सिंह, सौरभ मिश्रा, (सुश्री) वंशजा सलूजा, संजय कुमार त्यागी, प्रणय रंजन, कनु अग्रवाल, आयुष आनंद, शांतनु शर्मा, बी. वी. बलराम दास, दियांश राय, सी. एस. एन. मोहन राव, लोकेश कुमार शर्मा, निपुण सक्सेना, (सुश्री) सुकन्या सिंह, कार्तिकेय कनोजिया, विवेक जैन, (सुश्री) सुचित्रा कुम्भट, (सुश्री) साशा मारिया पॉल, मेहुल एम. गुप्ता, धनंजय रे, (सुश्री) वृंदा भंडारी, अपूर्व सिंघल, राजीव दूबे, ए. मिश्रा और के. मिश्रा

सर्वश्री हरिन पी. रावल और के. पी. विश्वनाथन, ज्येष्ठ अधिवक्तागण (न्यायमित्र)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. आर. शाह ने तथा न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट ने दिया ।

न्या. शाह – अलग-अलग संख्या की भिन्न-भिन्न पीठों के परस्पर-विरोधी मतों को, विशिष्ट रूप से एक ओर **श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1], **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2], **भदरेश बिपिनभाई सेठ** बनाम **गुजरात राज्य**[3] वाले मामलों में तथा दूसरी ओर **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4], जिसका बाद में **के. एल. वर्मा** बनाम **राज्य और एक अन्य**[5], **सुनीता देवी** बनाम **बिहार राज्य**[6], **निर्मलजीत कौर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[7], **एचडीएफसी बैंक लि.** बनाम **जे. जे. मेनन**[8] और **सतपाल सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[9] वाले मामलों में अनुसरण किया गया, ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित प्रश्न बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार के लिए निर्देशित किए गए हैं :–

> "(1) क्या किसी व्यक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई संरक्षा एक नियत अवधि तक सीमित होनी चाहिए, जिससे कि वह व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए समर्थ हो सके ?
>
> (2) क्या अग्रिम जमानत की कालावधि उस समय और प्रक्रम पर समाप्त हो जानी चाहिए, जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा समन किया जाता है ।"

2. न्यायमित्र के रूप में हाजिर होने वाले श्री हरिन पी. रावल,

---

[1] [1981] 1 उम. नि. प. 1231 = (1980) 2 एस. सी. सी. 565.

[2] (2011) 1 एस. सी. सी. 694.

[3] (2016) 1 एस. सी. सी. 152.

[4] (1996) 1 एस. सी. सी. 667.

[5] (1998) 9 एस. सी. सी. 348.

[6] (2005) 1 एस. सी. सी. 608.

[7] (2004) 7 एस. सी. सी. 558.

[8] (2010) 1 एस. सी. सी. 679.

[9] (2018) 4 एस. सी. सी. 303.

ज्येष्ठ अधिवक्ता ने **बाल चंद जैन** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह दलील दी कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त विनिश्चय में मत व्यक्त किया गया है, यद्यपि "अग्रिम जमानत" से अभिप्रेत "गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत" है । यह दलील दी गई कि पूर्वोक्त विनिश्चय में इस न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया था कि "अग्रिम जमानत" अभिव्यक्ति एक गलत नाम है क्योंकि यह ऐसी जमानत नहीं है मानो न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी की प्रत्याशा में वर्तमान काल में जमानत प्रदान की गई है । यह दलील दी गई कि जब कोई सक्षम न्यायालय "अग्रिम जमानत" प्रदान करता है तो वह यह आदेश देता है कि गिरफ्तारी की दशा में उस व्यक्ति को जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । यह दलील दी गई कि जब तक किसी व्यक्ति को गिरफ्तार नहीं किया जाता है, तब तक उसे जमानत पर छोड़ने का प्रश्न ही नहीं है और इसलिए केवल गिरफ्तारी होने पर ही "अग्रिम जमानत" प्रदान करने वाला आदेश प्रवर्तनशील बनता है ।

2.1 विद्वान् न्यायमित्र श्री रावल ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 को सम्मिलित करने के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया । यह दलील दी गई कि भारत के विधि आयोग की तारीख 24 सितंबर, 1969 की अपनी 41वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिश के आधार पर संसद् ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन "अग्रिम जमानत" के रूप में नया उपबंध पुर:स्थापित किया । यह दलील दी गई कि भारत के विधि आयोग ने अपनी 41वीं रिपोर्ट के पैरा 39.9 में "अग्रिम जमानत" प्रदान करने के औचित्य का उल्लेख किया है । यह दलील दी गई कि विधि आयोग के अनुसार "अग्रिम जमानत" प्रदान करने की आवश्यकता मुख्य रूप से इस कारण उद्भूत हुई है कि कभी-कभी प्रभावशाली व्यक्ति अपने विरोधियों को उनका अपमान करने के प्रयोजन से या कुछ दिनों के लिए उन्हें कारागार में निरुद्ध करने के अन्य प्रयोजनों के लिए मिथ्या मामलों में फंसाने की कोशिश करते हैं । यह दलील दी गई कि विधि आयोग ने यह भी मत व्यक्त किया कि राजनैतिक प्रतिद्वंद्विता के प्रबलन से यह प्रवृत्ति तेजी से बढ़ती हुई

---

[1] [1977] 4 उम. नि. प. 752 = (1976) 4 एस. सी. सी. 572.

दिखाई दे रही है । मिथ्या मामलों के अतिरिक्त, जहां यह अभिनिर्धारित करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो कि किसी अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के जमानत पर होते हुए फरार होने या अन्यथा अपनी स्वतंत्रता का दुरुपयोग करने की संभावना न हो, इस बात का कोई न्यायोचित्य प्रतीत नहीं होता है कि उससे यह अपेक्षा की जाए कि पहले वह अभिरक्षा में समर्पण करे, कुछ दिनों के लिए कारागार में रहे और फिर जमानत के लिए आवेदन करे ।

2.2 आगे यह दलील दी गई कि "अग्रिम जमानत" प्रदान करने की शक्ति केवल उच्च न्यायालयों और सेशन न्यायालयों में निहित है । यह दलील दी गई कि "अग्रिम जमानत" के लिए भिन्न-भिन्न प्रक्रमों पर आवेदन किया जा सकता है । यह दलील दी गई कि यहां तक कि ऐसे मामलों में भी जब कोई प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज नहीं की गई है और किसी व्यक्ति को, यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की जाती है, अपनी गिरफ्तारी की आशंका है, तो उस मामले में वह "अग्रिम जमानत" के लिए आवेदन कर सकता है और लोक अभियोजक को सूचना देने पश्चात् "अग्रिम जमानत" प्रदान कर सकता है । यह दलील दी गई कि यहां तक कि उस मामले में भी, जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की जाती है, किंतु अन्वेषण अभी आरंभ नहीं हुआ है अर्थात् अन्वेषण पूर्व प्रक्रम है, "अग्रिम जमानत" के लिए आवेदन किया जा सकता है । यह दलील दी गई कि अन्वेषण-पश्च प्रक्रम पर भी "अग्रिम जमानत" के लिए आवेदन किया जा सकता है । यह दलील दी गई कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय विवेकाधिकार का न्यायसम्मत रूप से प्रयोग करने के पश्चात् "अग्रिम जमानत" प्रदान कर सकता है और वह भी लोक अभियोजक को सुनने के पश्चात् । यह दलील दी गई कि अत: जब एक बार गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत प्रदान कर दी जाती है तो उसे न्यायालय द्वारा समन जारी किए जाने तक के लिए सीमित करने का कोई कारण नहीं है और/या गिरफ्तारी की प्रत्याशा में प्रदान की गई जमानत की अवधि को सीमित करने का कोई कारण नहीं है ।

2.3 न्यायमित्र के रूप में हाजिर होने वाले श्री हरिन पी. रावल, ज्येष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह दलील दी कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ ने

यह मत व्यक्त किया था और अभिनिर्धारित किया था कि जो सुविधा दंड प्रक्रिया की धारा 438 में दी गई है, उसे साधारणतया "अग्रिम जमानत" कहा जाता है और यह वह अभिव्यक्ति है, जिसे विधि आयोग द्वारा अपनी 41वीं रिपोर्ट में प्रयुक्त किया गया था । न तो धारा में और न ही उसके पार्श्व टिप्पण में इसके बारे में ऐसा वर्णन किया गया है, अपितु "अग्रिम जमानत" अभिव्यक्ति यह व्यक्त करने का एक सुविधाजनक तरीका है कि गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत के लिए आवेदन करना संभव है । यह दलील दी गई कि जमानत का कोई आदेश, वास्तव में, गिरफ्तारी की तारीख से ही प्रभावी हो सकता है क्योंकि, जैसा कि व्हारटन की लॉ लेक्सीकॉन में कहा गया है, जमानत प्रदान करना "किसी गिरफ्तार या कारावासित व्यक्ति को उसकी उपसंजाति के लिए ली जा रही प्रतिभूति पर स्वतंत्र कर देना है" । यह दलील दी गई कि इस प्रकार, जमानत मूलभूत रूप से अवरोध से मुक्त कर देना है, विशिष्ट रूप से, पुलिस की अभिरक्षा से मुक्त कर देना है । यह दलील दी गई कि गिरफ्तारी का कृत्य प्रत्यक्ष रूप से पुलिस द्वारा गिरफ्तार किए गए व्यक्ति की आवागमन की स्वतंत्रता को प्रभावित करता है और साधारण शब्दों में, जमानत का आदेश अभियुक्त को वह स्वतंत्रता इस शर्त पर वापस देता है कि वह अपने विचारण का सामना करने के लिए उपसंजात हो जाएगा । प्रतिभू, बंधपत्र और ऐसे अन्य ढंग ऐसे साधन हैं, जिनके द्वारा अभियुक्त से यह आश्वासन प्राप्त किया जाता है कि यद्यपि उसे जमानत पर छोड़ा गया है, तो भी वह उस अपराध या अपराधों के विचारण के लिए स्वयं को प्रस्तुत कर देगा, जिसके या जिनके लिए उसे आरोपित किया गया है और जिसके या जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया गया था । यह दलील दी गई कि जमानत के सामान्य आदेश और अग्रिम जमानत के आदेश के बीच विभेद यह है कि पूर्वकथित गिरफ्तारी के पश्चात् प्रदान की जाती है और इसलिए इसका अर्थ है पुलिस की अभिरक्षा से मुक्त कर देना, जबकि पश्चात्वर्ती गिरफ्तारी की प्रत्याशा में प्रदान की जाती है और इसलिए यह गिरफ्तारी होते ही प्रभावी हो जाती है । यह दलील दी गई कि दूसरे शब्दों में, जमानत के गिरफ्तारी-पश्च आदेश के विपरीत, यह एक गिरफ्तारी-पूर्व की विधिक प्रक्रिया है, जिसमें यह निदेश दिया जाता है

कि यदि उस व्यक्ति को जिसके पक्ष में यह जारी की जाती है, इसके पश्चात् उस अभियोग के आधार पर गिरफ्तार किया जाता है, जिसकी बाबत निदेश जारी किया गया है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ।

2.4 न्यायमित्र के रूप में हाजिर होने वाले श्री हरिन पी. रावल, ज्येष्ठ अधिवक्ता ने आगे यह दलील दी कि तथापि,, इस न्यायालय के समक्ष मुख्य प्रश्न यह हैं, (क) अग्रिम जमानत की कालावधि या निरंतरता क्या है जब एक बार इसे सक्षम न्यायालय द्वारा प्रदान कर दिया गया है ? ; (ख) जब एक बार अग्रिम जमानत प्रदान करने का आदेश पारित कर दिया गया है, तो क्या उक्त अग्रिम जमानत केवल आरोप पत्र/चालान/अंतिम रिपोर्ट फाइल करने के प्रक्रम तक बनी रहती है या यह विचारण के संपूर्ण काल के दौरान बनी रहती है ? श्री रावल द्वारा यह भी दलील दी गई कि एक अन्य प्रश्न उद्भूत हो सकता है, अर्थात् किसी मामले में जहां यदि अन्वेषण के दौरान अपराध में आलिप्त करने वाली नई सामग्री पाई जाती हैं, तो क्या न्यायालय द्वारा अग्रिम जमानत को, जो पहले ही प्रदान की जा चुकी है, रद्द करने के लिए उन सामग्री का अवलंब लिया जा सकता है ?

2.5 यह दलील दी गई कि क्योंकि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय को देखते हुए पूर्वोक्त प्रश्न अनिर्णीत विषय नहीं हैं । यह दलील दी गई कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया था कि अग्रिम जमानत के आदेश की निरंतरता की कोई सीमा नहीं है । न्यायालय को इसकी कालावधि का निदेश करने का पूर्ण विवेकाधिकार है, जो कुछ सप्ताह से लेकर ऐसी कालावधि तक अलग-अलग हो सकती है, जब तक कि आरोप पत्र फाइल नहीं किया जाता है और जिसका विचारण की संपूर्ण अवधि तक के लिए भी विस्तार हो सकता है । यह दलील दी गई कि यह भी मत व्यक्त किया गया है कि एकमात्र सोच-विचार दो प्रतिस्पर्धी हितों, अर्थात्, अभियुक्त की स्वतंत्रता की संरक्षा करने और पुलिस की ऋजु अन्वेषण करने की सार्वभौम शक्ति, का संतुलन बनाने की दृष्टि से होना चाहिए । विद्वान् न्यायमित्र श्री रावल ने **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान

न्यायपीठ द्वारा पैरा 42 और 43 में की गई मताभिव्यक्तियों का जोरदार रूप से अवलंब लिया ।

2.6 श्री रावल द्वारा यह भी दलील दी गई कि **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के पश्चात्वर्ती विनिश्चय में इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया था कि अग्रिम जमानत का आदेश जब एक बार दे दिया जाता है तो यह सामान्यतया विचारण की संपूर्ण कालावधि के दौरान बना रहता है । यह दलील दी गई कि यह भी मत व्यक्त किया गया है कि इसके द्वारा सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय की अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले अपने आदेश पर पुनर्विचार करने की शक्ति तब कम हो जाती है यदि ऐसी परिस्थितियां विद्यमान हैं या नई आवश्यकताएं उद्भूत हुई हैं, जिनमें हस्तक्षेप करना उचित है । **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा पैरा 94, 95, 98, 100, 122 और 123 में की गई मताभिव्यक्तियों का जोरदार रूप से अवलंब लिया गया है । श्री रावल द्वारा यह दलील दी गई कि तथापि,, **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिए गए निर्णय, विशिष्ट रूप से पैरा 95, 108, 122 और 123 में **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ की पैरा 42 और 43 में की गई मताभिव्यक्तियों को विचार में नहीं लिया गया है, जिनमें स्पष्ट रूप से यह प्रकट होता है कि सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय का विवेकाधिकार अग्रिम जमानत की अवधि को उन सभी सुसंगत बातों पर विचार करते हुए सीमित करने या विनिर्दिष्ट करने के लिए पर्याप्त विस्तृत है, जो न्यायालय को इस विवेकाधिकार के लिए प्रेरित करे । यह दलील दी गई कि **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अग्रिम जमानत विचारण की संपूर्ण निरंतरता के दौरान बनी रहती है और विनिर्दिष्ट रूप से इस धारणा को भी नामंजूर किया था कि अग्रिम जमानत एक सीमित समय के लिए ही हो सकती है और जिसके समाप्त होने पर अभियुक्त को अवश्य अभ्यर्पण कर देना चाहिए और एक नियमित जमानत के लिए आवेदन करना चाहिए । यह दलील दी गई कि परस्पर-विरोधी दृष्टिकोण को देखते हुए **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में किए

गए विनिश्चय, विशिष्ट रूप से पैरा 95, 108, 122 और 123 में की गई मताभिव्यक्तियों, पर पुन: विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

2.7 विद्वान् न्यायमित्र, श्री रावल द्वारा आगे यह दलील दी गई कि सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय का विवेकाधिकार आत्यंतिक है और विधान-मंडल द्वारा किसी प्रकार की कोई परिसीमाएं अधिरोपित नहीं की गई हैं । यह दलील दी गई कि अत: विवेकाधिकार का प्रयोग अग्रिम जमानत की कालावधि को भी यह सुनिश्चित करने के लिए सीमित किया जा सकता है कि अभियुक्त भी अन्वेषण में सहयोग करे या अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री प्राप्त करने के लिए, या अपराध में आलिप्त करने वाली नई परिस्थितियों, जिनसे अभियुक्त की सह-अपराधिता सिद्ध होती हो, को देखते हुए साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन सुसंगत बरामदगियां की जा सकें । यह दलील दी गई कि अत: **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अपनाया गया यह दृष्टिकोण कि अग्रिम जमानत विचारण की संपूर्ण अवधि के लिए बनी रहेगी, अग्रिम जमानत की ऐसी अवधि को सीमित करने के सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय के विवेकाधिकार को कम करता है । यह दलील दी गई कि ऐसे निर्वचन से **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा घोषित की गई विधि का पूर्णत: उल्लंघन होता है ।

2.8 उपरोक्त दलीले देने और इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के पूर्वोक्त विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए श्री रावल, विद्वान् न्यायमित्र ने निम्नलिखित यह निष्कर्ष निकाला है कि –

> (1) संसद् द्वारा अधिक्रम के क्रम में आने वाले सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय जैसे वरिष्ठ दांडिक न्यायालयों में निहित की गई शक्ति ऐसी शक्ति है, जो यह विनिश्चय करने के लिए पूर्ण विवेकाधिकार प्रदान करती है कि क्या अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को मंजूर किया जाए या नामंजूर और इस विवेकाधिकार में अग्रिम जमानत की कालावधि को ऐसे किसी सुसंगत समय तक या किसी प्रक्रम तक सीमित करने की अतिरिक्त शक्ति भी अंतर्निहित है, जो न्यायालय मामले के तथ्यों

और परिस्थितियों में तथा विद्यमान परिस्थितियों को दृष्टिगत करते हुए उचित समझे;

(2) अग्रिम जमानत प्रदान करने वाला आदेश मामले का अन्वेषण जारी रखने की अन्वेषण अभिकरण की शक्ति को वर्जित नहीं करेगा या अन्वेषण अभिकरण को क्रमश: अभियुक्त की अन्वेषण के प्रयोजनों के लिए वहां पुलिस अभिरक्षा की मांग करने या प्रदान किए जाने से नहीं रोकेगा जहां अन्वेषक अधिकारी यह महसूस करता है कि अभियुक्त की अभिरक्षा आवश्यक है । इसके अतिरिक्त, चूंकि अभिरक्षा गिरफ्तारी के केवल पहले 14 दिनों में प्रदान की जा सकती है, इसलिए जमानत की कालावधि को निर्बंधित करने का विनिश्चय दो प्रतिस्पर्धी हित अर्थात् व्यक्तिगत स्वतंत्रता और मामले का अन्वेषण करने की पुलिस की सार्वभौम शक्ति के बीच संतुलन बनाएगा;

(3) अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले उस आदेश की कालावधि को निर्बंधित किया जा सकता है, जो उस प्रक्रम पर किया गया हो सकता है, जहां ऐसा आदेश किसी संज्ञेय अपराध के संबंध में गिरफ्तारी होने की युक्तियुक्त आशंका के आधार पर उन मामलों में प्रदान किया गया है, जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की गई है या जहां अभी तक फाइल नहीं की गई है; उन मामलों में जहां प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या शिकायत फाइल की गई है, वहां यह आदेश गिरफ्तारी के पश्चात् दस दिन की अवधि तक निर्बंधित किया जा सकता है (चूंकि इससे अन्वेषण अभिकरण के लिए चार दिन की अवधि पुलिस अभिरक्षा प्राप्त करने के लिए, 14 दिनों की बाह्य सीमा के भीतर, रह जाती है) और इसके पश्चात् अग्रिम जमानत पर इस प्रकार छोड़े गए अभियुक्त के लिए धारा 437/439 के अधीन नियमित जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता रहती है; आनुकल्पिक रूप से, ऐसा आदेश आरोप पत्र फाइल किए जाने तक बना रह सकता है, जो गिरफ्तारी की 90 दिनों की अवधि के भीतर फाइल किया जाना चाहिए । यहां यह स्मरणीय है कि गिरफ्तारी के 90 दिनों के भीतर आरोप पत्र फाइल न किया जाना अभियुक्त को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 167 में अंतर्विष्ट

अभिव्यक्त अनुबंध को देखते हुए, अधिकार-स्वरूप, कानूनी जमानत या व्यतिक्रम जमानत के लिए हकदार बना देता है । इसी तरह, जहां अभियुक्त को अग्रिम जमानत पर छोड़ दिया जाता है, वहां अन्वेषण प्राधिकारी 90 दिनों के भीतर आरोप पत्र फाइल करने की शर्त का पालन करने के अध्यधीन नहीं हो सकेंगे क्योंकि इसका कोई परिणाम नहीं होगा चूंकि अभियुक्त को पहले से ही जमानत पर छोड़ा गया है । अत: अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले आदेश की कालावधि के प्रवर्तन को गिरफ्तारी के 10 दिनों तक निर्बंधित करने वाले न्यायिक पूर्व-निर्णयों द्वारा प्रतिपादित पूर्ववर्ती परिपाटी का पालन करना अधिक सुरक्षित हो सकेगा और अभियुक्त को संहिता की धारा 437/439 के अधीन नियमित जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता रहेगी और समान रूप से न्यायालय को यह स्वतंत्रता होगी कि वह ऐसे आवेदन पर अग्रिम जमानत प्रदान करने के तथ्य से किसी प्रकार से प्रभावित हुए बिना विचार करे, क्योंकि उस प्रक्रम पर ये बातें वहां बहुत ही समयपूर्व प्रक्रम की होती हैं, जहां स्वयमेव अन्वेषण प्रारंभिक प्रक्रम पर हो या सामग्री अभी एकत्रित की जानी हो और अभियुक्त से अभी परिप्रश्न किए जाने हैं; और

(4) एक बार प्रदान की गई अग्रिम जमानत को या तो वरिष्ठ न्यायालय में अपील करके चुनौती देने पर या जमानत के रद्दकरण के संबंध में भली-भांति स्वीकार्य और विधिक रूप से अतिष्ठित सिद्धांतों के सिद्ध करने पर उसी न्यायालय द्वारा रद्द भी किया जा सकता है ।

3. श्री के. वी. विश्वनाथन, ज्येष्ठ अधिवक्ता जिनसे भी न्यायमित्र के रूप में हमारी सहायता करने का अनुरोध किया गया था, ने यह दलील दी कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग हू-ब-हू धारा 437 और 439 के अधीन शक्ति के प्रयोग की तरह है । अत: यह दलील दी गई कि गिरफ्तारी की प्रत्याशा में धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत दोषसिद्धि के आदेश तक या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के अधीन सकारात्मक आदेश पारित किए जाने तक जमानत प्रदान करने वाले किसी अन्य आदेश की भांति

प्रभावी होनी चाहिए । यह दलील दी गई कि अत: **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) और **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय द्वारा अधिकथित विधि सही विधि को अधिकथित करती है । यह दलील दी गई कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में विशिष्ट रूप से पैरा 19, 42 और 43 में दिए गए अपवाद भली-भांति संहिता की स्कीम के अंतर्गत आते हैं ।

3.1 विद्वान् न्यायमित्र, श्री विश्वनाथन ने यह भी दलील दी कि गिरफ्तार करने की पुलिस की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अधीन है । यह दलील दी गई कि इस धारा के दो आवश्यक भाग हैं । एक, उन अपराधों के संबंध में है, जिनमें अधिकतम दंड सात वर्ष के कारावास तक का हो सकता है । दूसरा, उन अपराधों के संबंध में, जिनमें अधिकतम दंड सात वर्ष से अधिक या मृत्युदंड तक हो सकता है । यह दलील दी गई है कि यद्यपि उनकी अलग-अलग शर्तें और अवसीमाएं हैं, तो भी इस धारा के पठन मात्र से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जाती है, गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है । यह दलील दी गई कि यह शक्ति इस धारा में अधिकथित शर्तों द्वारा सीमित की गई है । इसके अतिरिक्त, इस सिद्धांत को, कि गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले में किया जाना आवश्यक नहीं है, **जोगिन्द्र कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1]; **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2]; और **अरनेश कुमार** बनाम **बिहार राज्य**[3] वाले मामलों में मान्यता दी गई है । यह दलील दी गई कि वास्तव में, **एम. सी. अब्राहम** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि पुलिस के लिए किसी व्यक्ति को केवल इस कारण गिरफ्तार करना आज्ञापक नहीं है कि उसकी अग्रिम जमानत नामंजूर कर दी गई थी ।

---

[1] (1994) 4 एस. सी. सी. 260 (पैरा 120).

[2] (2014) 2 एस. सी. सी. 1 (पैरा 107-108).

[3] (2014) 8 एस. सी. सी. 273 (पैरा 5 और 6).

[4] (2003) 2 एस. सी. सी. 649 (पैरा 15).

3.2 विद्वान् न्यायमित्र, श्री विश्वनाथन द्वारा यह भी दलील दी गई कि गिरफ्तार करने की शक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 द्वारा भी परिसीमित किया गया है । यह दलील दी गई कि जैसी कि विधि आयोग द्वारा मान्यता दी गई है, ऐसे मामले भी हैं, जहां गिरफ्तार करने की शक्ति का प्रयोग किया जाना आवश्यक या अनुज्ञात नहीं है । यह दलील दी गई है कि ऐसे मामलों में गिरफ्तार करने की शक्ति का प्रयोग करना किसी व्यक्ति के अधिकार और स्वतंत्रता का घोर अतिक्रमण होगा । यह दलील दी गई कि शक्ति का ऐसा प्रयोग करना धारा 41 के दुरुपयोग की कोटि में आएगा । यह दलील दी गई कि गिरफ्तारी और अभिरक्षा की शक्ति पर धारा 437 या 439 द्वारा उपबंधित नियंत्रण सीमित है क्योंकि यह नियंत्रण केवल कार्योतर है । यह दलील दी गई कि गिरफ्तार व्यक्ति तब तक पहले ही गिरफ्तारी का मानसिक आघात और अपमान सहन कर चुका होता है ।

3.3 यह भी दलील दी गई कि इस स्थिति के रक्षोपाय के लिए धारा 438 पुर:स्थापित की गई थी, जिससे कि आवश्यक मामलों में न्यायिक हस्तक्षेप का उपबंध किया जा सके । यह दलील दी गई कि यह न्यायिक हस्तक्षेप यह सुनिश्चित करने के लिए है कि गिरफ्तारी की शक्ति न्यायालयों की संवीक्षा के अधीन विनियमित हो । यह दलील दी गई कि गिरफ्तारी की शक्ति और अभियुक्त के अधिकारों के बीच और अधिक संतुलन बनाने के लिए यह शक्ति विनिर्दिष्ट रूप से सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को दी गई थी, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह न्यायिक हस्तक्षेप पर्यवेक्षण स्तर पर किया जाए न कि मजिस्ट्रेट के स्तर पर । यह दलील दी गई कि इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत निर्देश में उठाए गए दोनों प्रश्नों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है ।

3.4 विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में की गई सिफारिशों और डा. न्यायमूर्ति वी. एस. मालिमथ की अध्यक्षता वाली दांडिक न्याय व्यवस्था में सुधारों पर समिति की रिपोर्ट में की गई मताभिव्यक्तियों की ओर हमारा ध्यान दिलाते हुए श्री विश्वनाथन द्वारा यह दलील दी गई कि धारा 438 पुलिस की गिरफ्तार करने की शक्ति पर एक नियंत्रण है ।

यह दलील दी गई कि जैसा कि उपरोक्त विधि आयोग की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया है, यह न केवल मिथ्या मामलों के विरुद्ध नियंत्रण है अपितु उन मामलों में भी नियंत्रण करती है, जहां गिरफ्तारी की आवश्यकता उद्भूत नहीं होती है ।

3.5 यह भी दलील दी गई कि अन्यथा भी इस धारा के पठन मात्र से यह दर्शित होता है कि धारा की परिभाषा में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे यह दर्शित होता हो कि धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत समयाबद्ध होनी चाहिए । यह दलील दी गई कि यह वही स्थिति है, जो धारा 437 और 439 में है । यह दलील दी गई कि इस प्रक्रम पर धारा 438(3) सुसंगत है, जिस पर विचार किया जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 (3) में दो अति महत्वपूर्ण पहलू हैं, जो संहिता की स्कीम को समझने के लिए विचार किए जाने हेतु सुसंगत है, अर्थात् (क) उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश किया गया है, पहले गिरफ्तार किया जाना चाहिए । ऐसे व्यक्ति को फिर गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के आदेश के आधार पर जमानत पर छोड़ा जाता है । ऐसे छोड़े जाने के लिए उस व्यक्ति द्वारा बंधपत्र या प्रतिभू देने की धारा 441 की अपेक्षा का पालन किया जाना चाहिए; (ख) जहां मजिस्ट्रेट का धारा 204 के अधीन संज्ञान लेते हुए यह मत है कि प्रथम बार में वारंट जारी किया जाना अपेक्षित है, तो वह मजिस्ट्रेट केवल जमानतीय वारंट जारी करने के लिए सशक्त है न कि अजमानतीय वारंट । मजिस्ट्रेट की शक्ति में की गई इस कमी से स्पष्ट रूप से विधान-मंडल का यह आशय दर्शित होता है कि जिस व्यक्ति को धारा 438 के अधीन जमानत प्रदान की गई है, उसे संज्ञान लेने के प्रक्रम पर उक्त गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के आदेश के कारण गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि इस अभिव्यक्त उपबंध को ध्यान में रखते हुए, उक्त धारा का कोई अन्य निर्वचन किया जाना संभव नहीं है । यह दलील दी गई कि इसमें निर्दिष्ट दूसरा प्रश्न पूरी तरह से इस उपधारा के अंतर्गत आता है ।

3.6 विद्वान् न्यायमित्र, श्री विश्वनाथन द्वारा आगे यह दलील दी गई कि धारा 438 के अधीन पारित आदेश, जो कि एक गिरफ्तारी-पूर्व

जमानत आदेश की प्रकृति का है, तथापि,, यह सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के अधीन प्रदान की गई शक्ति के अध्यधीन है, जिसमें सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय को अभियुक्त को किसी भी समय गिरफ्तार करने का निदेश देने की शक्ति दी गई है । यह दलील दी गई कि इससे यह सुनिश्चित होता है कि न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा दो प्रतिस्पर्धी सिद्धांतों के बीच संतुलन पर, यदि आवश्यकता उद्भूत होती है, पुन: विचार किया जा सकता है । यह दलील दी गई कि अंतर केवल यह है कि इन मामलों में गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग केवल न्यायिक संवीक्षा के पश्चात् किया जाता है । यह दलील दी गई कि किसी भी दशा में और जैसा कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा मत व्यक्त किया गया है, एक बार धारा 438 के अधीन पारित किए आदेश तब तक विचारण तक जारी रहेंगे, जब तक कि सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा उन प्रक्रमों को देखते हुए जिन पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का प्रयोग किया गया है, ऐसे आदेश को सीमित नहीं कर देता है । यह दलील दी गई कि संहिता यह पूर्व-कल्पना करती है कि धारा 438 और 439 के अधीन पारित आदेश अस्थायी समयाबद्ध नहीं है या न ही हो सकता है । यह दलील दी गई कि व्यक्ति जिसके पक्ष में गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश पारित किया जाता है, उसे उसके पश्चात् केवल तभी अभिरक्षा में लिया जा सकता है, जब संहिता की धारा 439(2) के अधीन कोई विनिर्दिष्ट निदेश पारित किया जाता है ।

3.7 विद्वान् न्यायमित्र, श्री विश्वनाथन ने पूर्वोक्त दलीलें देते हुए और इस न्यायालय के पूर्वोक्त विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत हू-ब-हू संहिता की धारा 437 और 439 के अधीन पारित जमानत के आदेशों की तरह है; संहिता में धारा 438 के अधीन ठोस कारण से समयाबद्ध आदेश पारित करने के लिए न्यायालयों के हाथों में कोई शक्ति होना अनुध्यात नहीं है; दूसरी ओर, अन्वेषक अभिकरण धारा 439(2) के अधीन न्यायालय को समावेदन कर सकता है

और पुलिस द्वारा मामला बनाने की स्थिति में, न्यायालयों के पास अभियुक्त को अभिरक्षा में लिए जाने का निदेश देने की सभी शक्तियां हैं ।

4. भारत के विद्वान् महासालिसिटर, श्री तुषार मेहता ने **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 42 और 43 का जोरदार रूप से अवलंब लिया और यह दलील दी कि जैसा कि इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा मत व्यक्त किया है और यह अभिनिर्धारित किया गया है कि न्यायालय किसी निश्चित मामले में और न्यायसंगत कारणों से अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित कर सकता है । यह दलील दी गई कि **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय का एक सीमित सीमा तक गलत पठन किया है । यह दलील दी गई कि **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में जो यह कहा गया है कि "संविधान न्यायपीठ द्वारा की गई विधि की स्पष्ट घोषणा को ध्यान में रखते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जमानत प्रदान करने वाले आदेश की कालावधि को कम नहीं किया जा सकता है," इस सीमा तक **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा पैरा 42 में की गई मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए सही विधि नहीं हो सकती है । यह दलील दी गई कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने अग्रिम जमानत के आदेश को सीमित समयावधि तक के लिए होने को स्पष्ट तौर पर वर्जित नहीं किया है, और साथ ही केवल यह कहा है कि "प्रसामान्य नियम" समयावधि को सीमित करने का नहीं होना चाहिए । यह दलील दी गई कि **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय में जिस सीमा तक यह कहा गया है कि अग्रिम जमानत का आदेश आवश्यक तौर पर समय-सीमा तक सीमित किया जाना चाहिए, **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय के विरुद्ध है, जिसमें विनिर्दिष्ट रूप से यह कहा गया है कि "प्रसामान्य नियम" अग्रिम जमानत के आदेश को सीमित करने का नहीं होना चाहिए । यह दलील दी गई कि अत: **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) और **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामलों में दोनों तरफ के

चरमसीमा संबंधी मतों में, इस सीमित सीमा तक, **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों पर सही आलोक में विचार नहीं किया गया है । यह दलील दी गई कि किसी मामले में, लेखबद्ध किए गए न्यायसंगत कारणों से, "प्रसामान्य नियम" से विचलन करने के कारणों को उपदर्शित करते हुए, अग्रिम जमानत एक सीमित समयावधि के लिए प्रदान की जा सकती है, जो तद्नुसार समाप्त हो जाएगी ।

4.1 भारत के विद्वान् महासालिसिटर, श्री तुषार मेहता द्वारा यह भी दलील दी गई कि जहां तक द्वितीय निर्देश, अर्थात् क्या अग्रिम जमानत की कालावधि उस समय और प्रक्रम पर समाप्त हो जानी चाहिए, जब न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन किया जाता है, का संबंध है, यह दलील दी गई कि कोई नियम-निष्ठ सिद्धांत नहीं हो सकता है । यह दलील दी गई कि ऐसे मामले में जिसमें अग्रिम जमानत एक सीमित समयावधि के लिए प्रदान की जाती है, उसकी कालावधि तद्नुसार समाप्त हो जाएगी । यह दलील दी गई कि ऐसे मामले में, जिसमें अग्रिम जमानत शर्तों के बिना प्रदान की जाती है, वहां कालावधि को ऐसी जमानत के रद्दकरण के लिए आवश्यक हो गई परिस्थितियों में या ऐसा हस्तक्षेप करना आवश्यक होने पर समाप्त किया जा सकेगा । यह दलील दी गई कि कानून में आरोप पत्र फाइल किए जाने पर स्वयमेव जमानत का रद्द हो जाना अनुध्यात नहीं है और इसलिए **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय से, इस सीमा तक, सही विधि अधिकथित नहीं हो सकेगी । यह दलील दी गई कि, साथ ही, माननीय न्यायालयों ने जमानत/अग्रिम जमानत के सर्वग्राही आदेशों की परिपाटी से अस्वीकृति प्रकट की है । यह दलील दी गई कि प्रत्येक मामले में उद्भूत होने वाली संभाव्यताएं अलग-अलग हो सकती हैं और इसलिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में तद्नुसार विचार किया जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि यहां तक कि अग्रिम जमानत प्रदान करते हुए भी अन्वेषक अभिकरण के अभिरक्षा में लेकर परिप्रश्न करने के अधिकार को यांत्रिक रूप से बाधित नहीं किया जा सकता है ।

5. **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड** (उपर्युक्त) और **सतपाल सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए भारत के विद्वान् अपर महासालिसिटर, श्री विक्रमजीत बनर्जी द्वारा यह दलील दी गई कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त विनिश्चयों में अभिनिर्धारित किया गया है, धारा 438 का प्रयोजन केवल अन्वेषण की प्रक्रिया के दौरान संरक्षा प्रदान करना है और अभियुक्त को उसके विरुद्ध आरोप पत्र प्रस्तुत होने के उपरांत उस न्यायालय से नियमित जमानत की ईप्सा करनी चाहिए, जहां संपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की गई है । यह दलील दी गई कि किसी भी दशा में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन गिरफ्तारी-पूर्व जमानत प्रदान करने से अन्वेषण अधिकरण के अभिरक्षा में लेकर परिप्रश्न करने और आगे अन्वेषण करने की ईप्सा करने का अधिकार प्रभावित नहीं होगा ।

5.1 विद्वान् अपर महासालिसिटर, श्री बनर्जी द्वारा यह भी दलील दी गई कि जैसा कि **उदय मोहनलाल आचार्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है कि यहां तक कि जब सुपुर्दगी कार्यवाहियों के प्रक्रम पर भी यह पाया जाता है कि अभियुक्त जमानत पर है, तो सुपुर्द करने वाले मजिस्ट्रेट को जमानत रद्द करने और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने का अधिकार है, यदि वह ऐसा करना उचित समझता है । यह दलील दी गई कि जैसा कि इस न्यायालय द्वारा पूर्वोक्त विनिश्चयों में मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित किया गया है कि यह निर्वचन कि गिरफ्तारी से संरक्षा के लिए धारा 438 के अधीन आदेश विचारण के अंत तक प्रभावी बना रहेगा, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209(ख) को प्रभावी रूप से निष्फल बना देगा ।

5.2 अंत में, विद्वान् अपर महासालिसिटर, श्री बनर्जी ने यह दलील दी कि गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश प्रदान करते हुए आवश्यक रूप से शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिएं और यह आदेश एक सर्वग्राही आदेश नहीं हो सकता है; दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 209 (ख) और धारा

---

[1] (2001) 5 एस. सी. सी. 453.

240(2) के निबंधनों के अनुसार, मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्त को जांच के प्रक्रम के दौरान अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया जा सकता है, यदि वह अंतिम रिपोर्ट/आरोप पत्र या सुपुर्दगी कार्यवाहियों के प्रक्रम पर ऐसा करना आवश्यक समझता है । यह दलील दी गई कि इसलिए यह अनिवार्य है कि यदि अभियुक्त दांडिक अन्वेषण के पूर्ववर्ती प्रक्रम के दौरान गिरफ्तारी-पूर्व जमानत ले लेता है, तो दंड प्रक्रिया संहिता के उक्त उपबंधों के अधीन मजिस्ट्रेट की शक्ति कायम रहनी चाहिए और इसमें अभियुक्त को अभिरक्षा में भेजने की मजिस्ट्रेट की शक्ति भी है ।

6. प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् अधिवक्ता, श्री सी. एस. एन. मोहन राव ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय में अग्रिम जमानत के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया था और अग्रिम जमानत के लिए आवेदन पर विचार करते समय न्यायालयों को विधान-मंडल द्वारा प्रदान की गई वैवेकिक शक्ति को परिरक्षित रखा गया था । यह दलील दी गई कि संविधान न्यायपीठ ने ऐसी कोई परिसीमा या शर्तें अधिरोपित करने से इनकार कर दिया था, जो संसद् द्वारा अधिरोपित नहीं की गई हैं ।

6.1 प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि अग्रिम जमानत की अवधि के संबंध में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय को किसी निर्णय में प्रश्नगत नहीं किया गया है । यह दलील दी गई कि अग्रिम जमानत की अवधि के संबंध में, जैसा कि संविधान न्यायपीठ द्वारा प्रतिपादित किया गया है और **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में के आदेश, जिसका कई पश्चात्वर्ती निर्णयों में अनुसरण किया गया है, के बीच स्पष्ट विरोध है । यह दलील दी गई **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले का अनुसरण करने वाले पश्चात्वर्ती सभी निर्णय अनवधानता के कारण हैं ।

6.2 प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा आगे यह भी दलील दी गई कि प्रसामान्य नियम के तौर पर, अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित किया जाना अपेक्षित नहीं है ।

यह दलील दी गई कि तथापि,, न्यायालय अग्रिम जमानत प्रदान करते समय मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित कर सकता है । यह दलील दी गई कि अग्रिम जमानत की कालावधि आरोप पत्र के फाइल करने पर समाप्त नहीं हो जाएगी ।

6.3 प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह भी दलील दी गई कि बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार करने के लिए विरचित विधि के दोनों प्रश्न विचार करने के लिए उद्भूत नहीं होते हैं । यह दलील दी गई कि अग्रिम जमानत प्रदान करने की न्यायालय की वैवेकिक शक्ति पर कोई रोक या अवसीमाएं न डालते हुए संविधान न्यायपीठ द्वारा दिए गए विस्तृत कारणों पर विचार करते हुए और चूंकि संविधान न्यायपीठ के निर्णय में कोई अस्पष्टता नहीं है, यह न्यायालय **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय को दोहरा सकता है ।

7. हमने अलग-अलग पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना । अलग-अलग संख्या की भिन्न पीठों के परस्पर-विरोधी मतों को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित प्रश्न एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा विचार करने के लिए निर्दिष्ट किए गए हैं :–

> "(i) क्या किसी व्यक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई संरक्षा एक नियत अवधि तक सीमित होनी चाहिए, जिससे कि वह व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए समर्थ हो सके ।
>
> (ii) क्या अग्रिम जमानत की कालावधि उस समय और प्रक्रम पर समाप्त हो जानी चाहिए, जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा समन किया जाता है ।"

7.1 प्रारंभ में, यह उल्लेख किया जाना आवश्यक है कि संहिता में "अग्रिम जमानत" अभिव्यक्ति को परिभाषित नहीं किया गया है । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **बालचंद जैन** (उपर्युक्त) वाले मामले में मत

व्यक्त किया गया है "अग्रिम जमानत" से अभिप्रेत "गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत" है । जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है, "अग्रिम जमानत" अभिव्यक्ति एक गलत नाम है, क्योंकि यह ऐसी जमानत नहीं है, मानो न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी की प्रत्याशा में वर्तमान काल में जमानत प्रदान की गई है । अभियुक्त द्वारा गिरफ्तारी की प्रत्याशा में "अग्रिम जमानत" के लिए आवेदन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने से पूर्व के प्रक्रम पर या उस प्रक्रम पर किया जा सकता है, जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत कर दी गई है, किंतु आरोप पत्र फाइल नहीं किया गया है और अन्वेषण चल रहा है या अन्वेषण समाप्त हो जाने के पश्चात् के प्रक्रम पर किया जा सकता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन "अग्रिम जमानत" प्रदान करने की शक्ति केवल सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय में निहित है । अत: अंततोगत्वा संबंधित न्यायालय को ही "अग्रिम जमानत" के आवेदन पर विचार करना होता है और "अग्रिम जमानत" प्रदान करते समय अंततोगत्वा संबंधित न्यायालय को ही "अग्रिम जमानत" की सीमित अवधि सहित शर्तें अधिरोपित करनी होती हैं और यह उन प्रक्रमों पर निर्भर करता है, जिन पर अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया जाता है । जिस व्यक्ति के पक्ष में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन कोई गिरफ्तारी-पूर्व आदेश किया जाता है, उसे गिरफ्तार किया जाना चाहिए । तथापि,, जब एक बार गिरफ्तारी-पूर्व जमानत/अग्रिम जमानत का आदेश है, तो जब भी उसे गिरफ्तार किया जाता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहिए । अन्यथा, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन गिरफ्तारी-पूर्व जमानत और धारा 437 और 439 के अधीन जमानत के बीच कोई विभेद या फर्क नहीं रह जाता है । धारा 438 के अधीन गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के आदेश और धारा 437 और 439 के अधीन जमानत आदेश के बीच एकमात्र फर्क उन प्रक्रमों का है, जिस पर जमानत का आदेश पारित किया जाता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जमानत आदेश उसकी गिरफ्तारी से पूर्व और उसकी गिरफ्तारी की प्रत्याशा में होता है तथा 437 और 439 के अधीन जमानत का आदेश किसी व्यक्ति को गिरफ्तार किए जाने के पश्चात्

होता है । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के पठन मात्र से यह दर्शित होता है कि इस धारा की भाषा में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे यह दर्शित होता हो कि धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत समयाबद्ध होनी चाहिए ।

7.2 बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देशित किए गए विवाद्यकों, जो इसमें ऊपर निर्दिष्ट किए गए हैं, पर विचार करते हुए **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट किया जाना और विस्तारपूर्वक विचार किया जाना आवश्यक है । **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के समक्ष मामला पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय से उद्भूत हुआ था । उच्च न्यायालय ने जमानत के आवेदन को, जो उसके अनुसार निम्नलिखित सही विधिक स्थिति थी, का सार देने के पश्चात् नामंजूर कर दिया था :–

> "(1) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन शक्ति असाधारण स्वरूप की है और उसका प्रयोग केवल आपवादिक मामलों में यदाकदा किया जाना चाहिए ।
>
> (2) न तो संहिता की धारा 438 में और न ही किसी अन्य उपबंध में उन अपराधों के लिए जो अभी कारित नहीं किए गए हैं या उन अभियोगों के संबंध में जो अभी लगाए नहीं गए हैं, सर्वग्राही अग्रिम जमानत प्रदान करना प्राधिकृत नहीं किया गया है ।
>
> (3) उक्त शक्ति अनियंत्रित या दिशाहीन नहीं है अपितु धारा 437 में अधिरोपित परिसीमाएं इसमें विवक्षित हैं और उनकी बाबत यह समझा जाना चाहिए कि वे अवश्य धारा 438 पर अधिरोपित होती हैं ।
>
> (4) धारा 437 में वर्णित परिसीमाओं के अतिरिक्त, याची को अग्रिम जमानत प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए अवश्य एक विशेष मामला बनाना चाहिए ।
>
> (5) जहां अन्वेषक अभिकरण द्वारा धारा 167(2) के अधीन

अपराधी को पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने के लिए एक विधिसम्मत मामला बनाया जा सकता हो या साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराधी से संभाव्य रूप से प्राप्त होने वाली जानकारी से अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री प्राप्त करने का युक्तियुक्त दावा करने का मामला बनाया जा सकता हो, वहां धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ।

(6) मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों के संबंध में धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग तब तक नहीं किया जा सकता है, जब तक कि न्यायालय का उस प्रक्रम पर यह समाधान नहीं हो गया हो कि ऐसा आरोप मिथ्या या निराधार प्रतीत होता है ।

(7) यह जनता और राज्य के बृहत्तर हित में है कि आर्थिक अपराधों जैसे गंभीर मामलों में, जिनमें कार्यपालिका और राजनैतिक शक्ति के ऊंचे कद वाले व्यक्तियों का खुला भ्रष्टाचार अंतर्वलित हो, संहिता की धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए; और

(8) याचिका में किए गए असद्भाव के मात्र साधारण अभिकथन अपर्याप्त होते हैं । न्यायालय का उसके समक्ष सामग्री के आधार पर अवश्य यह समाधान होना चाहिए कि असद्भाव के अभिकथन सारभूत हैं तथा अभियोग मिथ्या और निराधार प्रतीत होता है ।"

7.3 दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन "अग्रिम जमानत" की स्कीम पर विचार करने के पश्चात् और पूर्ण न्यायपीठ से सहमत न होते हुए इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया और यह अभिनिर्धारित किया :–

"12.....अर्थान्वयन के किसी भी ज्ञात सिद्धांत के आधार पर, विस्तार तथा आयाम वाले शब्दों को साधारणत: इस प्रकार नहीं संकुचित कर दिया जाना चाहिए, जिससे कि कानून की भाषा से ऐसे निर्बंधनों और शर्तों के होने के बारे में अर्थ लगाया जा सके,

जिसे विधान-मंडल ने स्वयं ही अधिरोपित करना न तो उचित समझा था और न ही आवश्यक । विशेष रूप से यह बात तब सच है, जबकि कानून के ऐसे उपबंध का उद्देश्य जिस पर विचार किया जाना है, दैहिक स्वाधीनता के अधिकार जैसे मूल्यवान अधिकार को प्राप्त करना है और जिसमें ऐसी उपधारणा लागू करने की बात अंतर्ग्रस्त है, जो कि हमारे दंड-न्यायशास्त्र में उतना ही श्रेयस्कर है और जिसकी जड़े उतनी ही गहरी हैं, जितनी कि निर्दोषिता से संबंधित उपधारणा । यद्यपि अग्रिम जमानत के लिए आवेदन करने का अधिकार प्रथम बार धारा 438 द्वारा प्रदत्त किया गया था, तथापि,, विधान-मंडल उस उपबंध को अभिनियमित करके इस अर्थ में कि उसने अभूतपूर्व कदम नहीं उठाया है, वहां तक कोई नई बात नहीं की थी, जहां तक कि जमानत के लिए आवेदन करने के अधिकार का संबंध है । उसके समक्ष संहिता के समान प्रभाव के दो उपबंध मौजूद थे : धारा 437 जिसमें अजमानतीय मामलों में जमानत अनुदत्त करने संबंधी सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय से भिन्न अन्य न्यायालयों की शक्ति के बारे में उपबंध किया गया है और धारा 439, जिसमें जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की "विशेष शक्ति" के बारे में उपबंध किया गया है.....।"

जब विधान-मंडल धारा 438 का अधिनियमन कर रहा था, उस समय धारा 437 और 439 के उपबंधों ने उसके लिए सुविधाजनक नमूना प्रस्तुत किया था । यदि उसने ऐसा नहीं किया है और उस पैटर्न से विचलित हुआ है, जो कि आवश्यक उपांतरणों सहित सरलता के साथ अंगीकार किया जा सकता था, तो यह उपधारणा करके कि उससे कोई विशिष्ट या विनिर्दिष्ट प्रयोजन सिद्ध करना आशयित नहीं था, विचलन को पूर्ण प्रभाव देने से इनकार करना गलत होगा । हमारी राय में, वह विचलन श्रेयस्कर रूप से तथा सप्रयोजन किया गया था : वह विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट के कारण कम से कम भागत: श्रेयस्कर था, जिसमें, उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने में समर्थ बनाते हुए संहिता में उपबंध पुर:स्थापित करने की

आवश्यकता बताते हुए पैरा 39.9 में यह मत व्यक्त किया था कि "हमने कानून में कतिपय शर्तें, जिनके अधीन ही अग्रिम जमानत अनुदत्त की जा सकती है, अधिकथित करने के प्रश्न पर सावधानी के साथ विचार किया था" किंतु हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऐसी जमानत अनुदत्त करने का प्रश्न "न्यायालय के विवेक पर" छोड़ दिया जाना चाहिए और स्वयं कानूनी उपबंध द्वारा उसे नियंत्रित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि विवेकाधिकार वरिष्ठ न्यायालयों को प्रदत्त किया जा रहा था, जिनसे उसका न्यायिक रूप से प्रयोग करना प्रत्याशित था । विधान-मंडल ने उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के संबंध में विस्तृत विवेकाधिकार प्रदत्त किया था, क्योंकि उसने स्पष्ट रूप से, प्रथमतः, यह महसूस किया था कि उन शर्तों को, जिनके अधीन अग्रिम जमानत अनुदत्त की जानी चाहिए या नहीं की जानी चाहिए, प्रगणित करना कठिन होगा और द्वितीयतः, क्योंकि आशय अग्रिम जमानत की प्रकृति में अनुतोष अनुदत्त करने में सोपान में उच्चतर न्यायालय को कुछ स्वतंत्रता देना था । यही कारण है कि धारा 437 और 439 के पदों से विचलन करते हुए धारा 438(1) में इस भाषा का उपयोग किया गया है कि यदि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय "ठीक समझे, तो" वह यह निदेश दे सकता है कि आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाए । धारा 438 की उपधारा (2) अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की विस्तृत वैवेकिक शक्ति प्रदत्त करने के उसी विधायी आशय का और आगे तथा अधिक स्पष्ट प्रकटन है । उसमें यह उपबंध किया गया है कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए निदेश जारी करते हुए, 'उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है' जिनके अंतर्गत ऐसी शर्त भी हैं, जो कि उपधारा (2) के खंड (i) से (iv) तक में उपवर्णित हैं । विधायी आशय का सबूत सबसे अच्छे ढंग से उस भाषा में मिल सकता है, जिसका उपयोग विधान-मंडल करता है । बाह्य सहायता से अस्पष्टताओं को निस्संदेह स्पष्ट किया जा सकता है, किंतु उन शब्दों को, जो कि उतने विस्तृत और विवक्षित हैं, जितने कि धारा

438 में प्रयुक्त किए गए हैं, पूरी तरह विशेषकर तब प्रभावी बनाया जाना चाहिए, जबकि ऐसा करने से इनकार करने के परिणामस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता का तथा निर्दोषिता की उपधारणा का असम्यक् रूप से हनन होगा । यह बात ध्यान में रखनी है कि अग्रिम जमानत की ईप्सा केवल तभी की जाती है, जबकि इस अभियोग के आधार पर कि आवेदक ने अजमानतीय अपराध किया है, गिरफ्तारी की आशंका मात्र हो । ऐसा व्यक्ति, जिसे गिरफ्तार करने के कारण अपनी स्वतंत्रता खो देनी है, गिरफ्तारी की स्थिति में स्वतंत्रता की मांग करता है । यही वह प्रक्रम है, जिसमें उसकी स्वतंत्रता की संरक्षा करना वहां तक आवश्यक होता है, जहां तक कि किया जा सके, और इस उपधारणा को कि वह निर्दोष है, अपनी पूरी भूमिका अदा करनी आवश्यक होती है । वास्तव में, जिस प्रक्रम में अग्रिम जमानत की ईप्सा साधारण रूप से की जाती है, उसके परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति से असमरूपता प्रकट होती है, जिसमें कोई व्यक्ति, जिसे अजमानतीय अपराध के कारण गिरफ्तार किया जाता है, जमानत की मांग करता है । पश्चात्कथित स्थिति में, न्यायालय के लिए पर्याप्त आंकड़े उपलभ्य होते हैं या वह उन्हें मंगवा सकता है, जिनकी रोशनी में वह अनुतोष अनुदत्त कर सकता है या उससे इनकार कर सकता है और उसे अनुदत्त करते हुए धारा 437 में उल्लिखित सभी शर्तों या उनमें से किसी का अधिरोपण करके उसे उपांतरित कर सकता है ।

13. कहने का अर्थ यह नहीं है कि यदि अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, तो उसे, कोई शर्तें अधिरोपित किए बिना, अनुदत्त किया जाना चाहिए । वह धारा 438 के पदों के ही स्पष्टत: विरुद्ध होगा । यद्यपि उस धारा की उपधारा (1) में यह कहा गया है कि यदि 'वह न्यायालय ठीक समझे, तो वह जमानत के लिए आवश्यक निदेश दे सकता है', तथापि, उपधारा (2) न्यायालय को निदेश में ऐसी शर्तें शामिल करने की शक्ति देती है, जैसी कि वह किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ठीक समझे, जिसके अंतर्गत उपधारा के खंड (i) से लेकर (iv) तक में उल्लिखित शर्तें भी शामिल हैं । अत: संविवाद इस संबंध में

नहीं है कि क्या न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय शर्तें अधिरोपित करने की शक्ति है । वह स्पष्ट रूप से और अभिव्यक्त रूप से ऐसी शक्ति देती है । वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा न्यायिक विवेकाधिकार के आयाम को जो कि उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को ऐसी शर्तें अधिरोपित करने के लिए दिया गया है, जैसी कि वह अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के समय ठीक समझे, कानून में दी गई ऐसी शर्तें, जो उसमें मौजूद न हों, मौजूद होने संबंधी अर्थान्वयन करके सीमित किया जाना चाहिए ।

* * * * *

18. उच्च न्यायालय द्वारा विरचित छठे प्रतिपादन के अनुसार धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग उन अपराधों के संबंध में जो कि मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय हों, तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि उस प्रक्रम में न्यायालय का यह समाधान न हो गया हो कि ऐसा आरोप मिथ्या या निराधार प्रतीत होता है । धारा 438 उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति उस दशा में प्रदत्त करती है, यदि आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे "अजमानतीय अपराध" के किए जाने के अभियोग के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता है । इस उपबंध में उन शर्तों के मौजूद होने संबंधी अर्थान्वयन के लिए हमें कोई भी औचित्य दिखाई नहीं पड़ता है, जिनके अध्यधीन रहते हुए संहिता की धारा 437(1) के अधीन जमानत अनुदत्त की जा सकती है । अजमानतीय अपराधों के संबंध में जमानत अनुदत्त करने की शक्ति प्रदत्त करते हुए उस धारा में अपवाद के तौर पर यह उपबंध किया गया है कि ऐसा व्यक्ति जिस पर अजमानतीय अपराध का अभियोग है या जिस पर यह संदेह है कि उसने अजमानतीय अपराध किया है, उस देश में 'ऐसे न छोड़ा जाएगा' यदि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत होता है कि वह मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है । यदि यह आशय था कि

धारा 437(1) में अंतर्विष्ट अपराध धारा 438(1) के अधीन दिए जाने वाले अनुतोष के अनुदान को लागू होना चाहिए, तो पश्चात्कथित धारा में समरूप उपबंध के पुर:स्थापित करने की अपेक्षा विधान-मंडल के लिए और अधिक सरल बात कोई न होती । हमने उन दोनों धाराओं के बीच के आधारिक प्रभेद के बारे में पहले ही बता दिया है । धारा 437 ऐसे व्यक्ति को केवल तभी लागू होती है, जबकि ऐसे व्यक्ति को जिसकी बाबत यह अभिकथित किया गया है कि उसने अजमानतीय अपराध किया है, वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है या निरुद्ध किया जाता है या वह न्यायालय के समक्ष हाजिर होता है या लाया जाता है, धारा 438 गिरफ्तारी की जाने के पहले लागू होता है और वास्तव में उसे लागू होने की पूर्व शर्तों में से एक शर्त यह है कि ऐसे व्यक्ति को, जो कि उसके अधीन अनुतोष प्राप्त करने के लिए आवेदन करता है, यह दर्शित करने में समर्थ होना चाहिए कि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि "उसे गिरफ्तार किया जा सकता है" जिससे स्पष्ट रूप से यह अभिप्रेत है कि उसे अभी तक गिरफ्तार नहीं किया गया है । जमानत के अनुदत्त किए जाने से या इनकार किए जाने से इस प्रभेद का जो संबंध है, वह यह है कि धारा 437 के अधीन आने वाले मामलों में कुछ ऐसा आंकड़ा मौजूद है, जिसके आधार पर यह दर्शित करना संभव है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि आवेदक मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडित अपराध का दोषी है । धारा 438 के अधीन आने वाले मामलों में यह प्रक्रम अभी आना शेष है और उसके अधीन अधिकांश मामलों में यह कहना समय से पूर्व और वास्तव में कठिन है कि ऐसा विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण हैं या नहीं हैं । धारा 437(1) में जिस विश्वास के आधार के बारे में बताया गया है, जिसके कारण न्यायालय आवेदक को जमानत पर नहीं छोड़ सकता है, वह प्रसामान्यत: प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभिकथित अभिकथनों की विश्वसनीयता है । धारा 438 के अधीन आने वाले अधिकांश मामलों में अपेक्षित विश्वास कायम

रखने के लिए उस आंकड़े का अभाव होगा । यदि धारा 437 में उल्लिखित शर्तों को धारा 438 के उपबंधों पर भी लागू किया जाए, तो यह परिवर्तन विश्लेषण के बिना करना होगा । अर्थात्, उच्च न्यायालय के तर्क के आधार पर धारा 438(1) का अर्थान्वयन यह करना होगा कि उसमें ऐसा खण्ड अंतर्विष्ट है कि आवेदक को जमानत पर उस दशा में 'नहीं छोड़ा जाएगा', 'यदि यह विश्वास करने के लिए युक्ति आधार प्रतीत होते हैं कि वह मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है ।' इस प्रक्रिया में इस बात को नजरअंदाज करना होगा कि जहां की धारा 438(1) के अधीन प्रदत्त शक्ति का प्रयोग उस दशा में किया जा सकता है यदि उच्च या सेशन न्यायालय ऐसा करना 'ठीक समझे', वहीं धारा 437(1) जमानत अनुदत्त करने की शक्ति उन्हीं विस्तृत पदों में प्रदत्त नहीं करती है । 'यदि वह ठीक समझे' अभिव्यक्ति, जो कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की शक्ति के संबंध में धारा 438(1) में आई हुई है, धारा 437(1) में सहजदृष्टया मौजूद नहीं है । हमें धारा 438 को सीमित करने के प्रयोजनार्थ, न कि उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को प्रदत्त विवेकाधिकार के विस्तार और परिधि को विस्तृत करने की दृष्टि से, नए सिरे से प्रारूपण करने के लिए कोई भी विधिमान्य कारण दिखाई नहीं पड़ता है । तद्नुसार, हम उच्च न्यायालय के इस मत से सहमत होने में असमर्थ हैं कि अग्रिम जमानत आपराधिक न्यासभंग जैसे अपराधों के लिए मात्र इस कारण अनुदत्त नहीं की जा सकती हैं, कि उसके लिए उपबंधित दंड आजीवन कारावास है । परिस्थितियां ऐसे मामलों में भी जमानत के अनुदत्त किए जाने को, मोटे तौर से, न्यायोचित ठहरा सकती है, यद्यपि न्यायालय किसी मामले में अग्रिम जमानत से इनकार करने के लिए निश्चित रूप से उस दशा में स्वतंत्र होता है, यदि ऐसी इनकारी को न्यायोचित ठहराने के लिए उसके समक्ष सामग्री मौजूद हो ।

19. उच्च न्यायालय ने स्वयं द्वारा विरचित पांचवें प्रतिपादन में बहुत कुछ कहा है, जिसके अनुसार, अन्य बातों के साथ-साथ

धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग उस दशा में नहीं किया जाना चाहिए, यदि अन्वेषण करने वाला अधिकरण युक्तियुक्त रूप से यह दावा कर सकता हो कि वह ऐसी जानकारी से जो कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराधी से प्राप्त किया जाना संभाव्य है, अभिशंसी सामग्री प्राप्त कर सकता है । उच्च न्यायालय के मतानुसार, पुलिस का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह उसके ध्यान में लाए गए अपराधों का अन्वेषण करे और इसी कारण से न्यायालयों को इस बारे में सावधान रहना चाहिए कि वे उस रीति से अपनी शक्तियों का प्रयोग न करे, जो उसमें हस्तक्षेप करने की कोटि में आए । यह सच है कि न्यायपालिका और पुलिस के कृत्य, एक अर्थ में, अनुपूरक हैं, न कि अतिव्यापनकारी । ..... अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी प्रकार से, प्रत्यक्षत: या परोक्षत: पुलिस से उन आरोपों का, जो कि जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति के विरुद्ध लगाए गए हों या लगाए जाने हों, अन्वेषण करने संबंधी उसके अधिकार को नहीं छीनती है । वास्तव में धारा 438(1) के अधीन जारी किए गए निर्देश में समाविष्ट प्रायिक शर्तों में से दो वे शर्त हैं, जिनकी बाबत उपधारा (2)(i) और (ii) में उपबंध किया गया है, जो आवेदक से इस बात की अपेक्षा करती है कि वह पुलिस से सहयोग करे और इस बात का आश्वासन दे कि वह अन्वेषण के दौरान और उसके बाद साक्षियों को नहीं बहकाएगा । धारा 438(1) के अधीन अनुतोष अनुदत्त करते हुए, समुचित शर्तें धारा 438(2) के अधीन इस प्रकार अधिरोपित की जा सकती हैं, जिससे कि अबाधित अन्वेषण सुनिश्चित हो सके । ऐसी शर्तों में से एक शर्त यह भी हो सकती है कि पुलिस द्वारा यह मामला बनाए जाने की स्थिति में कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रकटीकरण संभाव्य है, जमानत पर छोड़ा गया व्यक्ति प्रकटीकरण को सुविधाजनक बनाने के लिए पुलिस अभिरक्षा में रखे जाने के दायित्वाधीन होगा । इसके अलावा यदि और जब अवसर आता है, अभियोजन-पक्ष के लिए यह संभव हो जाता है कि वह जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** देवमन उपाध्याय {[1961] 1

एस. सी. आर. 14} वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा बताए गए इस प्रभाव के सिद्धांत का सहारा लेकर, कि जब ऐसा व्यक्ति जो अभिरक्षा में नहीं है, किसी अपराध का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी के पास पहुंचता है और ऐसी जानकारी देने की प्रस्थापना करता है, जिसके परिणामस्वरूप आरोप से संबंधित कोई तथ्य प्रकट होता है, जो कि उसके विरुद्ध लगाया जाए, तो उसकी बाबत समुचित रूप से यह समझा जा सकता है कि उसने अपने आपको पुलिस के समक्ष अभ्यर्पित कर दिया है, तथ्य संबंध प्रकटीकरण की बाबत साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 का फायदा प्राप्त करने का दावा करें । इस नियम के विस्तृत आधार की बाबत यह बताया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46 में किसी व्यक्ति की बाबत यह कहे जाने के पूर्व कि उसे अभिरक्षा में ले लिया गया है, कोई औपचारिकता अनुध्यात नहीं है : शब्दों या कार्यवाही द्वारा किसी व्यक्ति द्वारा अभिरक्षा के लिए समर्पित करना पर्याप्त है । उसी प्रकार के कारणों से हम इस बात से सहमत होने में असमर्थ हैं कि अग्रिम जमानत देने के उस दशा में इनकार किया जाना चाहिए कि संहिता की धारा 167 (2) के अधीन अपराधी का पुलिस की अभिरक्षा के लिए रिमाण्ड किए जाने के वास्ते समुचित मामला अन्वेषण करने वाले अधिकरण द्वारा बनाया गया है ।

20. उच्च न्यायालय के तीसरे प्रतिपादन पर इसलिए विचार करना आवश्यक है क्योंकि हमने पहले ही यह उपदर्शित कर दिया है कि धारा 438 में उन परिसीमाओं के जो कि धारा 437 में उल्लिखित है, मौजूद होने संबंधी अर्थान्वयन करने के लिए कोई भी औचित्य नहीं है । उच्च न्यायालय का कहना यह है कि ऐसी परिसीमाएं धारा 438 में विवक्षित है, किंतु, सादर, ऐसी कोई भी विवक्षाएं न तो उद्भूत होती हैं, और न ही उनकी बाबत यह अर्थान्वयन किया जा सकता है कि वे उस धारा में मौजूद हैं । इस धारा को संपूर्ण रूप से अपना काम करने देना चाहिए ।

21. उच्च न्यायालय ने अपने चौथे प्रतिपादन में यह कहा है कि धारा 437 में उल्लिखित परिसीमाओं के अलावा अग्रिम जमानत

अनुदत्त करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए, याची को 'विशेष मामला' अवश्य ही बनाना चाहिए । वस्तुत:, इसके परिणामस्वरूप धारा 438 द्वारा प्रदत्त श्रेयस्कर शक्ति निरर्थक हो जाती है । यह दर्शित करने की उत्सुकता के कारण, जो कि अन्यथा न्यायोचित है कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति 'अनियंत्रित नहीं है या उसे इच्छित दिशा में मोड़ा जा सकता है', उच्च न्यायालय ने शक्ति को ऐसे निर्बंधन के अध्यधीन कर दिया है, जिसका प्रभाव उस शक्ति को पूर्णतया अनियंत्रित करना होगा । यह कहना कि आवेदक को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए 'विशेष मामला' बनाना चाहिए, वास्तव में कुछ भी कहना नहीं है । निस्संदेह, अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए आवेदक को मामला बनाना पड़ता है । किंतु इसके आगे और नहीं जाया जा सकता और यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे 'विशेष मामला' अवश्य ही बनाना चाहिए । हमारी समझ में यह बात नहीं आती है कि धारा 438 के उपबंधों के बारे में यह संदेह क्यों किया जाए कि इनमें परिवर्तनशील या विस्फोटक जैसी कोई बात मौजूद है, जिसके संबंध में ऐसी सर्वाधिक सतर्कता और सावधानी के साथ जिसकी कल्पना की जा सकती है, कार्यवाही की जानी चाहिए । न्यायिक शक्ति का बुद्धिमानी के साथ प्रयोग करने के परिणामस्वरूप आवश्यक रूप से उन बुरे परिणामों से बचाव हो जाता है, जो उसके असंयत उपयोग के कारण होना संभाव्य है । प्रत्येक प्रकार के न्यायिक विवेकाधिकार का उपयोग, उस मामले की जिसके संबंध में उसका प्रयोग करना अपेक्षित है, चाहे जो भी प्रकृति हो, सम्यक् सतर्कता और सावधानी के साथ करना होता है । वास्तव में, जिस संदर्भ में विवेकाधिकार का प्रयोग करना अपेक्षित है, उसका पता होना और उसके उपयोग के युक्तियुक्त रूप से पूर्वानुमान किए जाने योग्य परिणामों का पता होना, न्यायिक विवेकाधिकार के प्रज्ञापूर्ण प्रयोग का प्रमाणांकन है । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति को हौवा नहीं बनाया जाना चाहिए ।

22. प्रतिपादन सं. 1 द्वारा उच्च न्यायालय का यह कहना है

कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति 'असाधारण स्वरूप की है और उसका प्रयोग केवल आपवादिक मामलों में बहुत ही कम किया जाना चाहिए ।' उस शक्ति को असाधारण स्वरूप की शक्ति वर्णन करना कदाचित ठीक हो सकता है, क्योंकि मामूली तौर से धारा 437 या धारा 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन किया जाता है । इन धाराओं में किसी ऐसे व्यक्ति को, जो कि पुलिस की अभिरक्षा में है, जमानत अनुदत्त करने की या उससे इनकार करने की शक्ति के संबंध में उपबंध किया गया है और वह ऐसी मामूली स्थिति में, जिसमें साधारणत: जमानत के लिए आवेदन किया जाता है । किंतु इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष न्यायोचित नहीं ठहराता है कि शक्ति का प्रयोग केवल आपवादिक मामलों में किया जाना चाहिए, क्योंकि वह असाधारण स्वरूप की है । वास्तव में हम अनेक बार यह कहेंगे कि सब विवेकाधिकारों का प्रयोग सतर्कता और चौकसी के साथ किया जाना चाहिए, जो कि उसके प्रयोग को न्यायोचित ठहराने वाली परिस्थितियों पर निर्भर है । इससे आगे जाना, और विधान-मंडल द्वारा प्रदत्त विस्तृत शक्ति को आत्मभिरोपित परिसीमाओं की कठोर संहिता के अध्यधीन करना अनावश्यक है ।

* * * * *

25. .....हम, सादर, इस बात से सहमत है कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति उस अर्थ में जो कि ऊपर उपदर्शित है, असाधारण स्वरूप की है, अर्थात् यह कि उसका सहारा मामूली तौर से उस प्रकार से नहीं लिया जाता है, जिस प्रकार से धारा 437 और धारा 439 द्वारा प्रदत्त शक्तियों का सहारा लिया जाता है । हम इस बात से भी सहमत हैं कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति का प्रयोग सम्यक् सावधानी और चौकसी के साथ किया जाना चाहिए, किंतु उसके परे, उन विचारों से सहमत होना संभव नहीं है, जो कि **बालचंद जैन वाले मामले** {[1977] 4 उम. नि. प. 752-762 = [1977] 2 एस. सी. आर. 52} में पूर्णत: भिन्न संदर्भ में तथा पूर्णत: भिन्न मुद्दे के संबंध में व्यक्त किए गए थे ।

* * * * *

33. अत: हम उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को, बुद्धिमतापूर्ण और सावधानीपूर्ण रीति से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, जिसे करने के लिए वे अपने लंबे प्रशिक्षण और अनुभव के कारण वैचारिक दृष्टि से उपयुक्त हैं, धारा 438 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए छोड़ देना अधिक अच्छा समझेंगे । न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति इन न्यायालयों को वस्तुपरक रूप से और जमानत अनुदत्त करने की बात को लागू होने वाले सिद्धांतों के अनुरूप, जो कि वर्षों से मान्यताप्राप्त हैं, कार्य करने के लिए उन पर विश्वास करके अधिक हो सकती है, अपेक्षाकृत इसके कि उन्हें अपने विवेकाधिकार के प्रयोग से वंचित कर दिया जाए, जो विधान-मंडल ने साधारण प्रयोज्यता के अनम्य नियम अधिकथित करके उनको प्रदत्त किया है । किसी कानून को उस रूप में मानना जिस रूप में कि वह प्राप्त होता है, न केवल आम बात है, बल्कि पुरानी बात भी है और वह इस आधार पर है कि कुछ भी हो, 'विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि के अनुसार' किसी विशिष्ट अभिव्यक्ति का प्रयोग करना ठीक समझा है । उपयोगी रूप से कोई परंपरा विकसित हो सकती है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय की बुद्धि के अनुसार अपनी वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विशेषकर उस समय उन पर विश्वास किया जा सकता है, जबकि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि के अनुसार विवेकाधिकारों के प्रयोग को उनकी देखरेख में सौंपा हो । यदि वे गलती करते हैं तो वे ठीक किए जाने के दायी हैं ।

* * * * *

35. संहिता की धारा 438(1) में ऐसी शर्त अधिकथित है, जिसकी पूर्ति अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के पूर्व करनी पड़ती है । आवेदक को यह अवश्य ही दर्शित करना चाहिए कि उसके विश्वास करने का कारण है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है । 'विश्वास करने का कारण' अभिव्यक्ति के उपयोग से यह दर्शित होता है कि यह विश्वास कि आवेदक को उस प्रकार गिरफ्तार किया जा सकता है, युक्तियुक्त

आधारों पर आधारित होना चाहिए । मात्र 'भय' 'विश्वास' नहीं है, जिस कारण से आवेदक के लिए यह दर्शित करना ही काफी नहीं है कि उसके मन में किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उस पर ऐसा अभियोग लगाने जा रहा है, जिसके अनुसरण में गिरफ्तार किया जा सकता है । उन आधारों को, जिन पर आवेदक का यह विश्वास आधारित है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है, न्यायालय द्वारा वस्तुपरक रूप से परीक्षा किए जाने के लायक होना चाहिए, क्योंकि केवल तभी न्यायालय यह अवधारित कर सकता है कि क्या आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे इस प्रकार गिरफ्तार किया जा सकता है । अत: स्पष्ट और साधारण अभिकथनों के आधार पर धारा 438(1) का सहारा इस प्रकार नहीं लिया जा सकता, मानो कि किसी व्यक्ति को संभावित गिरफ्तारी के विरुद्ध शाश्वत् रूप से लैस किया गया हो । अन्यथा, अग्रिम जमानत के लिए किए जाने वाले अनेक आवेदन किसी भी स्थिति में इतने अधिक होंगे, जितने कि वयस्क लोग होते हैं । अग्रिम जमानत किसी व्यक्ति की स्वाधीनता को सुनिश्चित करने की युक्ति है; यह न तो अपराध करने का पासपोर्ट है और न ही संभाव्य या असंभाव्य किसी या सभी प्रकार के अभियोगों के विरुद्ध ढाल है ।

36. द्वितीयत:, यदि अग्रिम जमानत के लिए आवेदन उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो उसे इस प्रश्न पर अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य ही करना चाहिए और यह अवश्य विनिश्चित करना चाहिए कि ऐसा अनुतोष देने के लिए मामला बनाया गया है । वह संहिता की धारा 437 के अधीन संबंधित मजिस्ट्रेट के विनिश्चय के लिए उस प्रश्न और तब के लिए नहीं छोड़ सकता, जब कभी ऐसा अवसर आए । ऐसा रास्ता अपनाने से धारा 438 का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा ।

37. तृतीयत:, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल करना धारा 438 के अधीन शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं है । युक्तियुक्त विश्वास पर आधारित संभाव्य गिरफ्तारी की

सन्निकटता की बाबत यह दर्शित किया जा सकता है कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभी फाइल न भी की गई हो, तब भी वह विद्यमान है ।

38. चतुर्थतः, जब तक कि आवेदक को गिरफ्तार न कर लिया गया हो, अग्रिम जमानत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद भी अनुदत्त की जा सकती है ।

39. पांचवीं बात यह है कि धारा 438 के उपबंधों का सहारा अभियुक्त की गिरफ्तारी के बाद नहीं लिया जा सकता । ऐसे अभियुक्त को, जो गिरफ्तार कर लिया गया है, 'अग्रिम जमानत' अनुदत्त करना अपने आप में वहां तक परस्पर विरोधी है, जहां तक कि ऐसे अपराध या अपराधों का जिसके या जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है, संबंध है । गिरफ्तारी के बाद अभियुक्त को संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन अपने उपचार की ईप्सा उस दशा में करनी चाहिए, यदि वह उस अपराध या उन अपराधों के संबंध में, जिसके या जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है, जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहता है ।

40. हमने यह मत व्यक्त किया है कि उच्च न्यायालय ने केवल एक ऐसा प्रतिपादन विरचित किया है, जिससे कि हम सहमत हैं । वह प्रतिपादन सं. (2) है । हम इस बात से सहमत हैं कि अग्रिम जमानत से संबंधित सर्वग्राही आदेश (ब्लैंकेट आर्डर) साधारण रूप से नहीं दिया जाना चाहिए । यह बात इस धारा की भाषा से ही बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है, जो कि, जैसा कि ऊपर विवेचन किया जा चुका है, आवेदक से यह दर्शित करने की अपेक्षा करती है कि 'उसके पास यह विश्वास करने का कारण है' कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है । किसी विश्वास के युक्तियुक्त आधारों पर आधारित होने की बात केवल तभी कही जा सकती है, यदि ऐसी कोई ठोस बात हो, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आवेदक की यह आशंका कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, वास्तविक है । यही कारण है कि प्रसामान्यतः, धारा 438(1) के

अधीन इस प्रभाव का निदेश जारी नहीं किया जाना चाहिए कि आवेदक को 'जब कभी भी गिरफ्तार किया जाएगा और जिस किसी भी अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाएगा' जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । अग्रिम जमानत के 'सर्वग्राही आदेश' से जो बात अभिप्रेत है, वह ऐसा आदेश है जो कि अभिकथित रूप से अवैध किसी भी प्रकार के और हर प्रकार के क्रियाकलाप को वस्तुत: ऐसी किसी भी घटना को, जो कि संभाव्य या असंभाव्य हो, और जिसके संबंध में कोई भी ठोस जानकारी संभवत: नहीं मिल सकती, अपनी परिधि में लेने या संरक्षित करने के आवरण के रूप में कार्य करता है । धारा 438(1) के अधीन निदेश का तर्क-आधार युक्तियुक्त आधारों पर आधारित आवेदक का यह विश्वास है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है । आवेदक से यह प्रत्याशा करनी अवास्तविक है कि वह अपना आवेदन उतनी अति सावधानी के साथ लिखेगा, जितनी कि किसी सिविल मामले में दिए जाने वाले अभिवचन में बरती जाती है, और इस प्रकार की अपेक्षा इस धारा की नहीं है । किंतु आवेदक द्वारा विनिर्दिष्ट घटनाओं और तथ्यों को इस दृष्टि से प्रकट करना चाहिए, जिससे कि न्यायालय उसके विश्वास की युक्तियुक्तता के संबंध में निर्णय करने में समर्थ हो सके, जिसकी विद्यमानता इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग के लिए अनिवार्य शर्त है ।

41. इस तथ्य के अलावा कि कानून की भाषा यह अर्थान्वयन करने के लिए विवश करती है, इस बात पर जोर देने में यह महत्वपूर्ण सिद्धांत अंतर्निहित है कि उन तथ्यों को जिनके आधार पर धारा 438(1) के अधीन निदेश दिए जाने की ईप्सा की जाती है, स्पष्ट और विनिर्दिष्ट होना चाहिए, न कि अस्पष्ट और साधारण । उसी सिद्धांत का पालन करके ही किसी व्यक्ति की स्वाधीनता के अधिकार के और पुलिस को रिपोर्ट किए गए अपराधों में उसके द्वारा अन्वेषण करने के अधिकार के बीच संभावित टकराव से बचा जा सकता है । अग्रिम जमानत के सर्वग्राही आदेश के परिणामस्वरूप अन्वेषण के मामले में पुलिस के अधिकार और

कर्तव्य, दोनों में ही गंभीर हस्तक्षेप होना निश्चित है क्योंकि इस बात का ध्यान न रखते हुए कि आवेदक द्वारा किस प्रकार का अपराध किए जाने की बाबत अभिकथन किया गया है, और कब किया गया है, जमानत का ऐसा आदेश जिसमें अभिकथित रूप से अवैध किसी भी प्रकार के क्रियाकलाप की परिकल्पना की गई है, आवेदक को गिरफ्तार करने से पुलिस को तब भी निवारित करेगा, यदि वह जनता की उपस्थिति में ही कोई अपराध, उदाहरणार्थ हत्या करता है । तब, ऐसा आदेश अव्यवस्था का अनुज्ञापत्र हो सकता है और ऐसे अपराधों के, जिनकी बाबत कदाचित् पहले से नहीं बताया जा सकता था, जब आदेश किया गया था, शीघ्र अन्वेषण को अवरुद्ध करने का साधन हो सकता है । अत: ऐसे न्यायालय को, जो कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करता है, ऐसे अपराध या अपराधों को विनिर्दिष्ट करने की सावधानी बरतनी चाहिए, जिसके या जिनके संबंध में ही वह आदेश प्रभावी होगा । उस शक्ति का प्रयोग शून्य में नहीं किया जाना चाहिए ।

42. हमारे समक्ष धारा 438(1) के अधीन जमानत के आदेश किए जाने के संबंध में कतिपय छोटे-छोटे नमूनों के संबंध में कुछ विवेचन किया गया था । क्या लोक अभियोजक को सूचना दिए बिना उस धारा के अधीन कोई आदेश किया जा सकता है ? ऐसा आदेश किया जा सकता है । किंतु सूचना लोक अभियोजक या सरकारी अधिवक्ता को तुरन्त जारी की जानी चाहिए और जमानत संबंधी प्रश्न की पुन: परीक्षा पक्षकारों की संबंधित दलीलों की रोशनी में की जानी चाहिए । अंतरिम आदेश को भी उस धारा की अपेक्षाओं के अनुरूप ही होना चाहिए और उपयुक्त शर्तें उस प्रक्रम में भी आवेदक पर अधिरोपित की जानी चाहिए । क्या धारा 438(1) के अधीन किए गए आदेश के प्रवर्तन को निश्चित समय तक सीमित रहना चाहिए ? यह आवश्यक नहीं है । यदि ऐसा करने के लिए कारण मौजूद हैं, तो न्यायालय आदेश की परिधि के भीतर आने वाले विषय के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद भी संक्षिप्त कालावधि तक आदेश के प्रवर्तन को

सीमित कर सकेगा । ऐसे मामलों में आवेदक को इस बात का आदेश दिया जा सकता है कि वह संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन यथापूर्वोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद युक्तियुक्त रूप से संक्षिप्त कालावधि के भीतर जमानत का आदेश अभिप्राप्त कर ले । किंतु इस बात का अनुसरण अपरिवर्तनीय नियम के रूप में किए जाने की आवश्यकता नहीं है । प्रसामान्य नियम किसी कालावधि के संबंध में आदेश के प्रवर्तन को सीमित करना नहीं होना चाहिए ।

43. पिछले कुछ वर्षों के दौरान इस न्यायालय ने, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध की गई अपीलों की बाबत कार्यवाही करते हुए धारा 438(2)(i), (ii) और (iii) में उपवर्णित शर्तें अधिरोपित करके अनेक व्यक्तियों को अग्रिम जमानत अनुदत्त की है । इसके अलावा, न्यायालय ने, उन मामलों में से अधिकांश में यह निदेश दिया है कि (क) आवेदक को संक्षिप्त कालावधि के लिए पुलिस के समक्ष अपने आपको उस दशा में अभ्यर्पित कर देना चाहिए, यदि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन कुछ पता लगाया जाना है या (ख) यह कि उसकी बाबत यह समझा जाना चाहिए कि उसने उस दशा में स्वयं ही अभ्यर्पित कर दिया है, यदि ऐसा पता लगाया जाना है । कतिपय, आपवादिक मामलों में, न्यायालय ने, अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री को देखते हुए, यह निदेश दिया है कि अग्रिम जमानत का आदेश, उसकी परिधि के भीतर आने वाले विषयों के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद एक सप्ताह या उसके आस-पास की कालावधि तक ही प्रवर्तन में रहेगा । कुल मिलाकर इन आदेशों में समाधानकारी रीति से कार्य किया है, जिसके परिणामस्वरूप संबंधित व्यक्तियों को कम से कम असुविधा हुई और पुलिस के अन्वेषण करने के अधिकारों में कम से कम हस्तक्षेप हुआ है । न्यायालय ने व्यक्ति की दैहिक स्वाधीनता के अधिकार और पुलिस के अन्वेषण करने के अधिकार के बीच उन आदेशों के माध्यम से संतुलन कायम किया है, जिन अपीलार्थियों को विभिन्न न्यायालयों

ने अग्रिम जमानत देने से इनकार किया था, उन्हें यह न्यायालय संहिता की धारा 438(1) के अधीन बहुत पहले ही छोड़ चुका है ।"

7.4 **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ का पूर्वोक्त विनिश्चय कई वर्षों से कायम है और देश में सभी न्यायालयों द्वारा इसका अनुसरण किया गया है । अग्रिम जमानत प्रदान करते समय, न्यायालय/न्यायालयों द्वारा प्रसामान्यत: निम्नलिखित शर्तें अधिरोपित की जाती हैं जो **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(3) के साथ पठित धारा 438(2) के अनुरूप ही हैं :–

1. आवेदक अर्थात् .....अपनी नवीनतम स्वयं प्रमाणित फोटो के साथ .....रुपए का स्वीय बंधपत्र और उतनी ही रकम का प्रतिभू अन्वेषक अधिकारी के समाधानप्रद निम्नलिखित शर्तों पर प्रस्तुत करेगा;

2. आवेदक संबंधित पुलिस थाने में तारीख ..... को ..... से ..... बजे के बीच उपस्थित रहेगा;

3. आवेदक अन्वेषण में सहयोग करेगा और जब कभी अपेक्षित हो परिप्रश्न के लिए स्वयं को उपलब्ध करेगा;

4. आवेदक मामले के तथ्यों से परिचित किसी साक्षी को किसी प्रकार से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से विलुब्ध, भयभीत नहीं करेगा या वचन नहीं देगा जिससे कि उसे ऐसे तथ्यों को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को प्रकट करने से रोक सके;

5. आवेदक पुलिस के अन्वेषण में बाधा या रुकावट नहीं डालेगा और पुलिस द्वारा एकत्रित किए गए या अभी एकत्रित किए जाने वाले साक्ष्य के साथ रिष्टि नहीं करेगा;

6. आवेदक न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना विचारण समाप्त होने तक ..... राज्यक्षेत्र को नहीं छोड़ेगा;

7. आवेदक इस आदेश की तारीख से छह माह की अवधि के लिए तारीख .....को.....से..... बजे के बीच संबंधित पुलिस थाने के समक्ष अपनी उपस्थिति दर्ज कराएगा;

8. आवेदक विधि और व्यवस्था बनाए रखेगा;

9. आवेदक, बंधपत्र निष्पादित करने के समय अन्वेषक अधिकारी और संबंधित न्यायालय को अपना पता और मोबाइल नंबर देगा और मामले के अंतिम निपटारे तक निवास-स्थान में परिवर्तन नहीं करेगा;

10. आवेदक अपना पासपोर्ट, यदि कोई है, एक सप्ताह के भीतर अन्वेषक अधिकारी के समक्ष अभ्यर्पित करेगा और यदि उसके पास कोई पासपोर्ट नहीं है, तो वह अन्वेषक अधिकारी के समक्ष इस आशय का एक शपथपत्र फाइल करेगा;

11. आवेदक विचारण के दौरान नियमित रूप से उपस्थित रहेगा और उपरोक्त अपराधों के लिए विचारण पूर्ण करने के लिए माननीय न्यायालय का सहयोग करेगा ।

यदि उपरोक्त शर्तों में से किसी का भंग किया जाता है, तो अग्रिम जमानत का आदेश रद्द हो जाएगा । अन्वेषक अधिकारी प्रतिप्रेषण के लिए आवेदन फाइल करने के लिए स्वतंत्र होगा और संबंधित मजिस्ट्रेट इस पर गुणागुण के आधार पर, अग्रिम जमानत का आदेश प्रदान करने की बात से प्रभावित हुए बिना, विनिश्चय करेगा ।

तथापि,, **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा की गई इन विनिर्दिष्ट मताभिव्यक्तियों के बावजूद कि समयावधि के संबंध में प्रसामान्य नियम आदेश के प्रवर्तन को सीमित करना नहीं होना चाहिए, दूसरे शब्दों में, किसी समुचित मामले में तथा मामले के तथ्यों और परिस्थितियों और उस प्रक्रम पर विचार करते हुए जिस पर गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के लिए आवेदन फाइल किया गया था, संबंधित न्यायालय आदेश के प्रवर्तन को समयावधि के संबंध में सीमित कर सकता है, **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में के निर्णय के पूर्णत: गलत अर्थान्वयन पर आधारित हैं और पैरा 42 और 43 में की गई मताभिव्यक्तियों के पूर्णत: प्रतिकूल है, जिसमें विधि की यह स्पष्ट प्रतिपादना अधिकथित की गई है

कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन जमानत प्रदान करने के आदेश की कालावधि को कम नहीं किया जा सकता है । **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा पैरा 42 तथा 43 में की गई सुस्पष्ट मताभिव्यक्तियों के बावजूद, **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया और अभिनिर्धारित किया कि "अग्रिम जमानत" का आदेश आवश्यक रूप से समय-सीमा में सीमित किया जाना चाहिए । **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ द्वारा पैरा 42 और 43 में की गई विनिर्दिष्ट मताभिव्यक्तियों के बावजूद, बाद में बहुत से मामलों में **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय का अनुसरण किया गया, जो **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) और **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामलों में के पश्चात्वर्ती विनिश्चयों में अपनाए गए दृष्टिकोण के पूर्णरूपेण विपरीत है । इस प्रक्रम पर, यह उल्लेखनीय है कि **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय पर कतई विचार नहीं किया था । यह विवादग्रस्त नहीं किया जा सकता है कि **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय एक संविधान न्यायपीठ का विनिश्चय है जो तब तक आबद्धकर है जब तक इसे संविधान न्यायपीठ की अपेक्षा एक बृहत्तर न्यायपीठ द्वारा अपास्त नहीं किया जाता है । इसलिए **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के विनिश्चय और इसमें ऊपर उद्धृत सुसंगत मताभिव्यक्तियों पर विचार करते हुए, **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय, जहां तक इसमें यह दृष्टिकोण अपनाया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आदेश की कालावधि को कम नहीं किया जा सकता है, **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में पैरा 42 और 43 में संविधान न्यायपीठ द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए सही विधि नहीं है । **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाले

मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय भी जिसमें यह चरम दृष्टिकोण अपनाया गया है कि "अग्रिम जमानत" का आदेश आवश्यक रूप से समय-सीमा में सीमित किया जाना चाहिए, एक उचित विधि नहीं है और **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय के विरुद्ध और पूर्णरूपेण विपरीत है, जो कि एक संविधान न्यायपीठ का निर्णय है ।

7.5 इस प्रकार, **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ की मताभिव्यक्तियों पर विचार करते हुए, न्यायालय जमानत के आदेश के प्रवर्तन को केवल आदेश के अंतर्गत आने वाले मामले की बाबत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् एक संक्षिप्त अवधि तक के लिए सीमित कर सकेगा, यदि ऐसा करने के कारण हों, और आवेदक को ऐसे मामले में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् एक युक्तियुक्त संक्षिप्त अवधि के भीतर संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन जमानत का आदेश अभिप्राप्त करने के लिए निदेश दे सकेगा । संविधान न्यायपीठ ने यह भी मत व्यक्त किया है कि इसका निरपवाद नियम के रूप से अनुसरण किए जाने की आवश्यकता नहीं है । यह भी मत व्यक्त किया गया है और अभिनिर्धारित किया गया है कि प्रसामान्य नियम आदेश के प्रवर्तन को किसी समयावधि के संबंध में सीमित न करने का होना चाहिए । हमारी यह राय है कि संबंधित न्यायालय द्वारा गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश प्रदान करते समय, जिसके अंतर्गत समयावधि के संबंध में आदेश के प्रवर्तन को सीमित करना भी है, यदि परिस्थितियों में ऐसा करना आवश्यक हो, अति विशिष्ट रूप से उस प्रक्रम पर, जिस प्रक्रम पर "अग्रिम जमानत" के लिए आवेदन किया जाता है अर्थात् क्या आवेदन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने से पूर्व के प्रक्रम पर किया गया है या उस प्रक्रम पर जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल की जाती है और अन्वेषण किया जा रहा है या उस प्रक्रम पर जब अन्वेषण पूर्ण हो गया है और आरोप पत्र फाइल किया गया है । तथापि,, जैसा कि इसमें ऊपर मत व्यक्त किया गया है, प्रसामान्य नियम समयावधि के संबंध में आदेश को सीमित न करने का होना चाहिए ।

निर्देश का उत्तर दिया गया ।

न्या. एस. रविन्द्र भट –

1. मैंने न्यायमूर्ति एम. आर. शाह के तर्काधार और निष्कर्षों पर विशद विचार किया है । मैं उनके निर्णय से सहमत हूं । तथापि,, मैं इस अलग निर्णय से न्यायमूर्ति शाह द्वारा निकाले गए निष्कर्षों की अनुपूर्ति कर रहा हूं चूंकि मेरा यह मत है कि जबकि आवश्यक तर्काधार पर कोई असहमति नहीं है, कुछ पहलुओं की अतिरिक्त रूप से चर्चा किए जाने की आवश्यकता है ।

2. पांच न्यायाधीशों की इस बृहत्तर न्यायपीठ को निम्नलिखित प्रश्न निर्देशित किए गए हैं :–

(1) क्या किसी व्यक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई संरक्षा एक नियत अवधि तक सीमित होनी चाहिए, जिससे कि वह व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए समर्थ हो सके ?

(2) क्या अग्रिम जमानत की कालावधि उस समय और प्रक्रम पर समाप्त हो जानी चाहिए, जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा समन किया जाता है ?

पृष्ठभूमि

3. पहले, एक पृष्ठभूमि । श्री **गुरबक्श सिंह सिब्बिया** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ के निर्णय में अग्रिम जमानत (एक धारणा जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "दंड प्रक्रिया संहिता" कहा गया है) के अधिनियमन तक विद्यमान नहीं थी) के लिए उपबंध पर उपलब्ध दृष्टिकोणों पर विचार किया था । धारा 438 में दो श्रेणी के न्यायालयों– सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को ऐसे व्यक्ति को, जिसे गिरफ्तारी की आशंका है, गिरफ्तार न करने के लिए निदेश जारी करने के लिए समर्थ बनाया गया है । सिब्बिया वाले मामले में इस उपबंध के

[1] [1981] 1 उम. नि. प. 1231 = (1980) 2 एस. सी. सी. 565.

इतिहास, महसूस की गई आवश्यकता जिसके परिणामस्वरूप इसका अधिनियमन किया गया, विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट में की गई मताभिव्यक्तियों और टिप्पणियों, जिसमें ऐसे उपबंध के पुर:स्थापन का सुझाव दिया गया था, और प्रचलित परिपाटियों के प्रभाव पर विस्तारपूर्वक विचार किया गया था । संक्षेप में, सिब्बिया वाले मामले में (जिसका यह न्यायालय बाद में और अधिक विस्तार से विश्लेषण करेगा) यह अभिनिर्धारित किया गया था कि यह शक्ति (अग्रिम जमानत प्रदान करने की) व्यापक निबंधनों में दी गई है और इसे संकीर्ण न्यायिक निर्वचन के द्वारा संकुचित नहीं किया जाना चाहिए । साथ ही, बृहत्तर न्यायपीठ (पांच न्यायाधीशों की, जिसने सिब्बिया वाले मामले का विनिश्चय किया था) ने यह न्यायादेश दिया था कि प्रस्तुत अलग-अलग मामलों में न्यायालय ऐसी शर्तें अधिरोपित कर सकते हैं जो परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए समुचित हों ।

4. इस निर्देश की आवश्यकता इसलिए हुई, क्योंकि प्रस्तुत मामले में तीन न्यायाधीशों की एक न्यायपीठ ने तारीख 15 मई, 2018 को इस उपबंध–धारा 438 के निर्वचन के संबंध में परस्पर विरोधी दृष्टिकोण पाए । इस न्यायालय ने प्रथम दृष्ट्या यह पाया कि एक पंक्ति के निर्णयों में (**सलाउद्दीन अब्दुलसामद** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1], **के. एल. वर्मा** बनाम **राज्य और एक अन्य**[2], **सुनीता देवी** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[3], **अदरी धरन दास** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[4], **निर्मलजीत कौर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य**[5], **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड** बनाम **जे. जे. मेनन**[6], **सतपाल सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[7], और **नरेश कुमार यादव** बनाम **रविन्द्र कुमार**[8] वाले मामले) यह अभिनिर्धारित किया

---

[1] (1996) 1 एस. सी. सी. 667.

[2] (1998) 9 एस. सी. सी. 348.

[3] (2005) 1 एस. सी. सी. 608.

[4] (2005) 4 एस. सी. सी. 303.

[5] (2004) 7 एस. सी. सी. 558.

[6] (2010) 1 एस. सी. सी. 679.

[7] (2018) 1 एस. सी. सी. ऑनलाइन (एस. सी.) 415.

[8] (2008) 1 एस. सी. सी. 632.

गया है कि अग्रिम जमानत के आदेशों में या तो समय के प्रति निर्देश करते हुए या ऐसी घटना के घटने, जैसे कि दांडिक कार्यवाहियों में आरोप पत्र का फाइल किया जाना, के प्रति निर्देश करते हुए निरपवाद रूप से शर्तें अंतर्विष्ट की जानी चाहिएं, जो उसके प्रवर्तन में रहने के समय को प्रभावित करेंगी और जिसके पश्चात् संबंधित व्यक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 के अधीन नियमित जमानत प्राप्त करनी होगी । न्यायालय ने यह भी पाया कि, दूसरी ओर, सिब्बिया वाले मामले में ऐसे अनम्य दृष्टिकोण का सुझाव नहीं दिया गया है । दूसरी पंक्ति के मामलों में **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] और **भदरेश बिपिनभाई सेठ** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले सम्मिलित हैं; इन मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अंतरिम जमानत प्रदान करते समय न्यायालय को कोई शर्तें अधिरोपित नहीं करनी चाहिएं और जमानत अनिश्चित काल तक यहां तक कि जब प्रस्तुत दांडिक मामले में आरोप विरचित कर दिए जाते हैं तो विचारण से लेकर विचारण की समाप्ति तक व्यक्ति को लागू होगी और संरक्षा प्रदान करेगी ।

5. सिब्बिया वाले मामले में इस न्यायालय ने उस पृष्ठभूमि पर विस्तारपूर्वक विचार किया था, जिसमें अंतरिम जमानत के लिए उपबंध का पुर:स्थापन किया गया था । न्यायालय ने विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट का उल्लेख किया, जिसकी सिफारिश पर यह उपबंध पुर:स्थापित किया गया था । सिब्बिया वाले मामले में इस सिफारिश के प्रक्रम से लेकर प्रारूप विधेयक तक और बाद में इसके अधिनियमन होने तक के इतिहास का निम्नलिखित मताभिव्यक्ति करते हुए पता लगाया :–

> "4. दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 में वर्तमान धारा 438 का तत्संबंधी कोई भी विनिर्दिष्ट उपबंध नहीं था । पुरानी संहिता के अधीन इस प्रसंग के संबंध में कि क्या न्यायालयों को गिरफ्तारी का पूर्वानुमान करते हुए जमानत का आदेश देने की अंतर्निहित शक्ति है, विभिन्न उच्च न्यायालयों के बीच स्पष्ट मत-वैभिन्न था

---

[1] (2011) 1 एस. सी. सी. 694.

[2] (2016) 1 एस. सी. सी. 152.

और प्रबल दृष्टिकोण यह था कि उसे कोई भी शक्ति प्राप्त नहीं है । दंड प्रक्रिया संहिता में व्यापक संशोधन करने की आवश्यकता बहुत समय से महसूस की जा रही थी और संहिता को और अधिक प्रभावी तथा व्यापक बनाने की दृष्टि से भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में विभिन्न सुझाव दिए गए थे । भारत के विधि आयोग में तारीख 24 सितंबर, 1969 वाली अपनी 41वीं रिपोर्ट में संहिता में ऐसा उपबंध पुर:स्थापित करने की आवश्यकता बताई थी, जिससे कि उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय 'अग्रिम जमानत' अनुदत्त करने में समर्थ हो सकें । उसने अपनी रिपोर्ट (खंड-1) के पैरा 39.9 में यह मत व्यक्त किया था –

> "39.9 हमने किसी व्यक्ति की गिरफ्तारी से पूर्व, जमानत पर (जो कि सामान्यतया 'अग्रिम जमानत के रूप में ज्ञात है') उसे छोड़ने का निदेश देने के सुझाव पर बहुत सावधानी के साथ विचार किया । यद्यपि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने संबंधी न्यायालय की शक्ति के बारे में न्यायालयों के बीच मतभेद है, तथापि, बहुमत की राय यह है कि संहिता के विद्यमान उपबंधों के अधीन ऐसी कोई भी शक्ति नहीं है । 'अग्रिम जमानत' अनुदत्त करने की आवश्यकता मुख्यत: इसलिए उत्पन्न होती है, क्योंकि कभी-कभी प्रभावशाली व्यक्ति अपने प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखाने के प्रयोजनार्थ और कुछ दिनों तक उन्हें जेल में निरुद्ध करके अन्य प्रयोजनों के लिए झूठे मामले में फंसाने की कोशिश करते हैं । हाल में, राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता की सुस्पष्टता के साथ-साथ इस प्रवृत्ति के आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ने के चिह्न दिखाई दे रहे हैं । झूठे मामले के अलावा, जहां कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का फरार होना संभाव्य नहीं है या उसके द्वारा अपनी स्वाधीनता का अन्यथा दुरुपयोग करना उस समय संभाव्य नहीं है, जबकि वह जमानत पर हो, युक्तियुक्त आधार मौजूद हैं तो वहां उससे यह अपेक्षा करने में कोई भी न्यायोचित्य

दिखाई नहीं पड़ता है कि वह प्रथमत: अपने आपको अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर दे, कुछ दिनों तक जेल में रहे और तब जमानत के लिए आवेदन करे ।

हम इस सुझाव को स्वीकार करने की सिफारिश करते हैं । इसके अलावा हमारा मत यह है कि यह विशेष शक्ति उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को ही प्रदत्त की जानी चाहिए और यह कि ऐसे आदेश को गिरफ्तारी के उस समय या उसके बाद प्रभावी होना चाहिए ।

इस सुझाव के ब्यौरों को निश्चित करने की दृष्टि से नई धारा का निम्नलिखित प्रारूप विचारार्थ प्रस्तुत किया जाता है –

'497क. (1) जब किसी व्यक्ति को यह युक्तियुक्त आशंका हो कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जाएगा, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है । वह न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए यह निदेश दे सकेगा कि उसकी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए ।

(2) उस व्यक्ति के विरुद्ध अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट धारा 204(1) के अधीन कदम उठाते हुए या तो समन या जमानतीय वारंट जारी करेगा, जैसा कि उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश में उपदर्शित हो ।

(3) यदि कोई व्यक्ति जिसके संबंध में ऐसा निदेश दिया गया है, उस अपराध के किए जाने के अभियोग में थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है, और या गिरफ्तारी के समय या ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में रहते हुए किसी भी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो ऐसा व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ।'

हमने कानून में कतिपय ऐसी शर्तें, जिनके अधीन भी अग्रिम

जमानत अनुदत्त की जा सकती है, अधिकथित करने के प्रसंग पर सावधानी के साथ विचार किया । किंतु हमने यह पाया कि उन शर्तों को सर्वांगीण रूप से प्रगणित करना व्यवहारिक नहीं हो सकता; और इसके अलावा ऐसी शर्तों को अधिकथित करने का यह अर्थान्वयन किया जा सकता है कि संपूर्ण मामले पर (किसी भी स्थिति में आंशिक रूप से) पूर्व-निर्णय किया गया है । इसलिए हम न्यायालय के विवेक पर छोड़ देंगे और कानूनी उपबंध की सीमाओं में ही ऐसे विवेकाधिकार को नियंत्रित न करना अच्छा समझेंगे । निस्संदेह, वरिष्ठ न्यायालय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग उचित रूप से करेंगे और अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाले आदेश में ऐसे कोई मत व्यक्त नहीं करेंगे, जिनके परिणामस्वरूप अभियुक्त के न्यायोचित विचारण पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ने की संभावना हो ।

5. विधि आयोग ने जो सुझाव दिया उसे केंद्रीय सरकार ने सिद्धांतत: स्वीकार कर लिया, जिसमें उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की अभिव्यक्त शक्ति प्रदत्त करने की दृष्टि से दंड प्रक्रिया संहिता, 1970 के विधेयक के प्रारूप में खंड 447 पुर:स्थापित किया । वह खंड इस प्रकार से था :–

> '447. (1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण हो कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जाएगा, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है; और यदि वह न्यायालय ठीक समझे, तो वह निदेश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए ।
>
> (2) यदि तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब वह ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है, तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर

छोड़ दिया जाएगा तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा ।'

6. विधि आयोग ने अपनी 48वीं रिपोर्ट (1972) के पैरा 31 में पूर्वोक्त खंड के संबंध में निम्नलिखित टिप्पणी की –

'31. विधेयक में अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए उपबंध पुर:स्थापित किया गया है । यह सारत: पूर्ववर्ती आयोग द्वारा की गई सिफारिश के अनुसार है । हम इस बात से सहमत हैं कि यह उपयोगी परिवर्धन होगा, यद्यपि हमें यह अवश्य ही कहना पड़ेगा कि अति आपवादिक मामलों में ही ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए ।

इसके अलावा हमारा यह मत है कि यह सुनिश्चित करने की दृष्टि से कि बेईमान याची इस उपबंध का दुरुपयोग न करें, अंतिम आदेश लोक अभियोजक को सूचना देने के बाद ही किया जाना चाहिए । प्रारंभिक आदेश मात्र अंतरिम आदेश होना चाहिए । इसके अलावा, सुसंगत धारा में यह बात स्पष्ट कर दी जानी चाहिए कि निदेश केवल अभिलिखित किए जाने वाले कारणों से और केवल तभी जारी किया जा सकता है, यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि ऐसा निदेश न्याय के हित में आवश्यक है ।

यह उपबंध करना भी सुविधाजनक होगा कि अंतरिम आदेश की तथा अंतिम आदेशों की सूचना पुलिस अधीक्षक को तुरंत दी जाए ।'

1970 के विधेयक का खंड 447, कतिपय उपांतरणों सहित अधिनियमित किया गया था और उसका स्थान दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 ने लिया, जिस धारा को हमने इस निर्णय के प्रारंभ में ही उद्धृत कर दिया है ।"

6. सिब्बिया वाला मामला पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की एक पूर्ण न्यायन्यायपीठ के विनिश्चय की शुद्धता के संदर्भ में था, जिसने धारा 438 का निर्बंधित रूप से निर्वचन किया और यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 438 के अधीन शक्ति "असाधारण है" और इसका प्रयोग अवश्य केवल आपवादिक मामलों में यदाकदा किया जाना चाहिए; यह उन अपराधों के संबंध में जो अभी कारित नहीं हुए हैं या उन अभियोगों के विषय में जो लगाए नहीं गए हैं, सर्वग्राही रीति में अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए सशक्त नहीं करती है; यह एक दिशाहीन शक्ति नहीं है, अपितु धारा 437 में उपबंधित परिसीमाओं के अध्यधीन है – जो विवक्षित हैं और इनका धारा 438 में होने का अवश्य अर्थ लगाया जाना चाहिए । पूर्ण न्यायपीठ ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि याची को अग्रिम जमानत प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए अवश्य एक विशेष मामला बनाया जाना चाहिए"; और यह भी कि जहां पुलिस अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित करने का एक विधिसम्मत मामला बनाया जाता है या अपराधी से "साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन संभाव्य रूप से प्राप्त होने वाली जानकारी से उसे अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री प्राप्त करने का दावा करने का मामला बनाया जा सकता है, वहां धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ।" पूर्ण न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 438 का उपभोग मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों के संबंध में तब तक नहीं किया जा सकता है "जब तक कि न्यायालय का इसी प्रक्रम पर यह समाधान नहीं हो जाता है कि ऐसा आरोप मिथ्या या निराधार प्रतीत होता है ।" इसी तरह, बृहत्तर लोक हित और राज्य के हित में "आर्थिक अपराधों जैसे ऐसे गंभीर मामलों में जिनमें कार्यपालिका और राजनैतिक शक्ति के ऊंचे कद वाले व्यक्तियों का खुला भ्रष्टाचार अंतर्वलित है," धारा 438 का आश्रय नहीं लिया जा सकता है और यह कि :–

> "8. याचिका में किए गए असद्भाव के मात्र साधारण अभिकथन अपर्याप्त हैं । न्यायालय का उसके समक्ष सामग्री के आधार पर यह समाधान होना चाहिए कि असद्भाव के कथन सारभूत हैं और अभियोग मिथ्या और निराधार प्रतीत होता है ।"

7. सिब्बिया वाले मामले में इस विवाद्यक पर चर्चा की गई और यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 438 का संकीर्ण, निर्बंधित निर्वचन करने की आवश्यकता नहीं थी । इस न्यायालय ने पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के विनिश्चय का अननुमोदन किया; पांच न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने निम्नलिखित निर्णय दिया :–

> "…..जब विधान-मंडल धारा 438 का अधिनियमन कर रहा था, उस समय धारा 437 और 439 के उपबंधों ने उसके लिए सुविधाजनक नमूना प्रस्तुत किया था । यदि उसने ऐसा नहीं किया है और उस पैटर्न से विचलित हुआ है, जो कि आवश्यक उपांतरणों सहित सरलता के साथ अंगीकार किया जा सकता था, तो यह उपधारणा करके कि उससे कोई विशिष्ट या विनिर्दिष्ट प्रयोजन सिद्ध करना आशयित नहीं था, विचलन को पूर्ण प्रभाव देने से इनकार करना गलत होगा । हमारी राय में, वह विचलन श्रेयस्कर रूप से तथा सप्रयोजन किया गया था : वह विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट के कारण कम से कम भागत: श्रेयस्कर था, जिसमें, उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने में समर्थ बनाते हुए संहिता में उपबंध पुर:स्थापित करने की आवश्यकता बताते हुए पैरा 39.9 में यह मत व्यक्त किया था कि "हमने कानून में कतिपय शर्तें, जिनके अधीन ही अग्रिम जमानत अनुदत्त की जा सकती है, अधिकथित करने के प्रश्न पर सावधानी के साथ विचार किया था" किंतु हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि ऐसी जमानत अनुदत्त करने का प्रश्न "न्यायालय के विवेक पर" छोड़ दिया जाना चाहिए और स्वयं कानूनी उपबंध द्वारा उसे नियंत्रित नहीं किया जाना चाहिए, क्योंकि विवेकाधिकार वरिष्ठ न्यायालयों को प्रदत्त किया जा रहा था, जिनसे उसका न्यायिक रूप से प्रयोग करना प्रत्याशित था । विधान-मंडल ने उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के संबंध में विस्तृत विवेकाधिकार प्रदत्त किया था, क्योंकि उसने स्पष्ट रूप से, प्रथमत:, यह महसूस किया था कि उन शर्तों को, जिनके अधीन अग्रिम जमानत अनुदत्त की जानी चाहिए या नहीं की जानी चाहिए, प्रगणित करना कठिन होगा और द्वितीयत:,

क्योंकि आशय अग्रिम जमानत की प्रकृति में अनुतोष अनुदत्त करने में सोपान में उच्चतर न्यायालय को कुछ स्वतंत्रता देना था । यही कारण है कि धारा 437 और 439 के पदों से विचलन करते हुए धारा 438(1) में इस भाषा का उपयोग किया गया है कि यदि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय 'ठीक समझे, तो' वह यह निदेश दे सकता है कि आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाए । धारा 438 की उपधारा (2) अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की विस्तृत वैवेकिक शक्ति प्रदत्त करने के उसी विधायी आशय का और आगे तथा अधिक स्पष्ट प्रकटन है । उसमें यह उपबंध किया गया है कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए निदेश जारी करते हुए, 'उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है' जिनके अंतर्गत ऐसी शर्त भी है, जो कि उपधारा (2) के खंड (i) से (iv) तक में उपवर्णित है । विधायी आशय का सबूत सबसे अच्छे ढंग से उस भाषा में मिल सकता है, जिसका उपयोग विधान-मंडल करता है । बाह्य सहायता से अस्पष्टताओं को निस्संदेह स्पष्ट किया जा सकता है, किंतु उन शब्दों को, जो कि उतने विस्तृत और विवक्षित हैं, जितने कि धारा 438 में प्रयुक्त किए गए हैं, पूरी तरह विशेषकर तब प्रभावी बनाया जाना चाहिए, जबकि ऐसा करने से इनकार करने के परिणामस्वरूप व्यक्ति की स्वतंत्रता का तथा निर्दोषिता की उपधारणा का असम्यक् रूप से हनन होगा । यह बात ध्यान में रखनी है कि अग्रिम जमानत की ईप्सा केवल तभी की जाती है, जबकि इस अभियोग के आधार पर कि आवेदक के अजमानतीय अपराध किया है, गिरफ्तारी की आशंका मात्र हो । ऐसा व्यक्ति, जिसे गिरफ्तार करने के कारण अपनी स्वतंत्रता खो देनी है, गिरफ्तारी की स्थिति में स्वतंत्रता की मांग करता है । यही वह प्रक्रम है, जिसमें उसकी स्वतंत्रता की संरक्षा करना वहां तक आवश्यक होता है, जहां तक कि किया जा सके, और इस उपधारणा को कि वह निर्दोष है, अपनी पूरी भूमिका अदा करनी आवश्यक होती है । वास्तव में, जिस प्रक्रम में अग्रिम जमानत की ईप्सा साधारण रूप से की जाती है, उसके परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति से असमरूपता प्रकट होती है, जिसमें

कोई व्यक्ति, जिसे अजमानतीय अपराध के कारण गिरफ्तार किया जाता है, जमानत की मांग करता है । पश्चात्कथित स्थिति में, न्यायालय के लिए पर्याप्त आंकड़े उपलभ्य होते हैं या वह उन्हें मंगवा सकता है, जिनकी रोशनी में वह अनुतोष अनुदत्त कर सकता है या उससे इनकार कर सकता है और उसे अनुदत्त करते हुए धारा 437 में उल्लिखित सभी शर्तों या उनमें से किसी का अधिरोपण करके उसे उपांतरित कर सकता है ।

13. कहने का अर्थ यह नहीं है कि यदि अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, तो उसे, कोई शर्तें अधिरोपित किए बिना, अनुदत्त किया जाना चाहिए । वह धारा 438 के पदों के ही स्पष्टत: विरुद्ध होगा । यद्यपि उस धारा की उपधारा (1) में यह कहा गया है कि यदि 'वह न्यायालय ठीक समझे, तो वह जमानत के लिए आवश्यक निदेश दे सकता है', तथापि, उपधारा (2) न्यायालय को निदेश में ऐसी शर्तें शामिल करने की शक्ति देती है, जैसी कि वह किसी विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए ठीक समझे, जिसके अंतर्गत उपधारा के खंड (i) से लेकर (iv) तक में उल्लिखित शर्तें भी शामिल हैं । अत: संविवाद इस संबंध में नहीं है कि क्या न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय शर्तें अधिरोपित करने की शक्ति है । वह स्पष्ट रूप से और अभिव्यक्त रूप से ऐसी शक्ति देती है । वास्तविक प्रश्न यह है कि क्या अर्थान्वयन की प्रक्रिया द्वारा न्यायिक विवेकाधिकार के आयाम को जो कि उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को ऐसी शर्तें अधिरोपित करने के लिए दिया गया है, जैसी कि वह अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के समय ठीक समझे, कानून में दी गई ऐसी शर्तें, जो उसमें मौजूद न हों, मौजूद होने संबंधी अर्थान्वयन करके सीमित किया जाना चाहिए, जैसे कि वे शर्तें जिन्हें उच्च न्यायालय ने निश्चित की हैं, या जिनकी बाबत विद्वान् अपर महासालिसिटर ने विवाद उठाया है, स्पष्ट रूप से और जोर देकर, नकारात्मक है । उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को जिसको अग्रिम जमानत से संबंधित आवेदन किया जाता है, जमानत अनुदत्त करने के लिए अपने न्यायिक विवेकाधिकार के प्रयोग में

स्वतंत्र छोड़ दिया जाना चाहिए, यदि वे मामले के विशिष्ट तथ्यों के आधार पर और परिस्थितियों में तथा ऐसी शर्तों पर जैसी कि उस मामले में उचित हों, ऐसा करना ठीक समझें । इसी प्रकार से यदि उस मामले की परिस्थितियों में ऐसा करना न्यायोचित हो, तो उन्हें धारा 437 में उल्लिखित बातों के समरूप बातों के आधार पर या उनके आधार पर जो इस संहिता की धारा 439 के अधीन साधारण रूप से सुसंगत मानी जाती हैं, जमानत देने से इनकार करने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना चाहिए ।

14. उन विषयों के संबंध में, जो कि विवेकाधिकार पर निर्भर होते हैं, साधारणीकरण से तथा व्यापक रूप से लागू करने के लिए आवश्यक फार्मूले की तब खोज करने की कोशिश से जब एक मामले से दूसरे मामले के तथ्यों से भिन्न होना निश्चित है, विवेकाधिकार प्रदत्त करने के प्रयोजन में बाधा उत्पन्न होती है । तथ्यों के आधार पर दो मामले समान नहीं होते और इसी कारण से, यदि वैवेकिक शक्ति के प्रदत्त करने को अर्थपूर्ण होना है, तो न्यायालयों को ऐसे संयोजन में कुछ स्वतंत्रता देनी चाहिए । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने में सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को विवेकाधिकार देने में कोई भी जोखिम अंतर्वलित नहीं है, क्योंकि प्रथमत: वे ऐसे उच्चतर न्यायालय हैं, जिनमें अनुभवी व्यक्ति काम करते हैं, द्वितीयत:, उनके आदेश अंतिम नहीं होते, अपितु उनकी अपीली या पुनरीक्षणात्मक समीक्षा की जा सकती है और इन सब के अलावा इसलिए भी क्योंकि न्यायालयों द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायिक रूप से, न कि खब्त, सनक या अटकल के आधार पर किया जाता है । दूसरी ओर, ऐसे मामलों के प्रवर्गों को पुरोबंधित करने में जोखिम है, जिनमें अग्रिम जमानत इसलिए अनुज्ञात की जा सकती है, क्योंकि जीवन में अप्रत्याशित संभावनाएं होती हैं और नई-नई चुनौतियां सामने आती हैं । न्यायिक विवेकाधिकार को इतना स्वतंत्र होना चाहिए, जिससे कि इन संभावनाओं को ध्यान में रखकर कार्य किया जा सके और इन चुनौतियों का सामना किया जा सके । साधारण रूप से लागू किए जाने वाले नियमों द्वारा अबाधित न्यायिक विवेकाधिकार को

परिरक्षित करने की आवश्यकता होती है ।

* * * * *

19. उच्च न्यायालय ने स्वयं द्वारा विरचित पांचवें प्रतिपादन में बहुत कुछ कहा है, जिसके अनुसार, अन्य बातों के साथ-साथ धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग उस दशा में नहीं किया जाना चाहिए, यदि अन्वेषण करने वाला अधिकरण युक्तियुक्त रूप से यह दावा कर सकता हो कि वह ऐसी जानकारी से जो कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन अपराधी से प्राप्त किया जाना संभाव्य है, अभिशंसी सामग्री प्राप्त कर सकता है । उच्च न्यायालय के मतानुसार, पुलिस का यह अधिकार और कर्तव्य है कि वह उसके ध्यान में लाए गए अपराधों का अन्वेषण करे और इसी कारण से न्यायालयों को इस बारे में सावधान रहना चाहिए कि वे उस रीति से अपनी शक्तियों का प्रयोग न करे, जो उसमें हस्तक्षेप करने की कोटि में आए । यह सच है कि न्यायपालिका और पुलिस के कृत्य, एक अर्थ में, अनुपूरक हैं, न कि अतिव्यापनकारी । और जैसा कि प्रिवी काउन्सिल ने किंम एम्परर **बनाम** ख्वाज़ा नजीर अहमद [ए. आई. आर. 1945 पी. सी. 18 = (1943-44) 71 इंडियन अपील्स 203 = 46 क्रि. एल. जे. 413] वाले मामले में मत व्यक्त किया था :–

> "जिस प्रकार से यह आवश्यक है कि प्रत्येक ऐसे व्यक्ति की पहुंच जिस पर अपराध करने का अभियोग लगाया गया हो, न्यायालय तक इस प्रकार होनी चाहिए जिससे कि वह उस दशा में सम्यक् रूप से दोषमुक्त किया जा सके यदि वह उस अपराध का दोषी न पाया जाए जिसका आरोप उस पर लगाया गया है, उसी प्रकार से यह अत्यधिक महत्व की बात है कि न्यायपालिका को ऐसे मामलों में कि उसके अधिकार क्षेत्र के भीतर है और जिनमें विधि उन पर जांच करने का कर्तव्य अधिरोपित करती है, पुलिस के काम में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए । न्यायपालिका और पुलिस के कृत्य अनुपूरक हैं, न कि अतिव्यापनकारी, और विधि और व्यवस्था के सम्यक्

> अनुपालन और व्यक्ति की स्वाधीनता का संयोजन तभी हो सकता है, जबकि प्रत्येक को अपने-अपने कृत्य करने के लिए छोड़ दिया जाए ।"

किंतु स्मरण रहे, ये टिप्पणियां प्रिवी काउन्सिल ने लाहौर उच्च न्यायालय के इस मत को कि दंड प्रक्रिया संहिता की पुरानी धारा 561क के अधीन उसे ऐसी सभी कार्यवाहियों को अभिखंडित करने की अन्तर्निहित अधिकारिता प्राप्त हे, जो पुलिस ने दर्ज कराई गई दोनों प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के अनुसरण में की थीं, अस्वीकृत करते हुए की थीं । ऐसी कार्यवाहियों को अभिखंडित करने वाले आदेश के परिणामस्वरूप वे कार्यवाहियां समाप्त हो गईं, जिसका आवश्यक परिणाम यह हुआ कि अभियोग का समस्त अन्वेषण ठप्प पड़ गया । अत: यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायालय, अपनी अन्तर्निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए, वस्तुत: यह निदेश नहीं दे सकता है कि पुलिस प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अन्तर्विष्ट आरोपों का अन्वेषण नहीं करेगी । यहां पर हमारा संबंध ऐसी स्थिति से है जो कि पूर्णत: भिन्न प्रकार की है । अग्रिम जमानत का आदेश किसी भी प्रकार से, प्रत्यक्षत: या परोक्षत: पुलिस से उन आरोपों का, जो कि जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति के विरुद्ध लगाए गए हों या लगाए जाने हों, अन्वेषण करने संबंधी उसके अधिकार को नहीं छीनती है । वास्तव में धारा 438(1) के अधीन जारी किए गए निर्देश में समाविष्ट प्रायिक शर्तों में से दो वे शर्त हैं, जिनकी बाबत उपधारा (2) (i) और (ii) में उपबंध किया गया है, जो आवेदक से इस बात की अपेक्षा करती है कि वह पुलिस से सहयोग करे और इस बात का आश्वासन दे कि वह अन्वेषण के दौरान और उसके बाद साक्षियों को नहीं बहकाएगा । धारा 438(1) के अधीन अनुतोष अनुदत्त करते हुए, समुचित शर्तें धारा 438(2) के अधीन इस प्रकार अधिरोपित की जा सकती हैं, जिससे कि अबाधित अन्वेषण सुनिश्चित हो सके । ऐसी शर्तों में से एक शर्त यह भी हो सकती है कि पुलिस द्वारा यह मामला बनाए जाने की स्थिति में कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रकटीकरण संभाव्य है, जमानत पर छोड़ा गया व्यक्ति प्रकटीकरण को सुविधाजनक बनाने के लिए

पुलिस अभिरक्षा में रखे जाने के दायित्वाधीन होगा । इसके अलावा यदि और जब अवसर आता है, अभियोजन-पक्ष के लिए यह संभव हो जाता है कि वह जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** देवमन उपाध्याय {[1961] 1 एस. सी. आर. 14} वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा बताए गए इस प्रभाव के सिद्धांत का सहारा लेकर, कि जब ऐसा व्यक्ति जो अभिरक्षा में नहीं है, किसी अपराध का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी के पास पहुंचता है और ऐसी जानकारी देने की प्रस्थापना करता है, जिसके परिणामस्वरूप आरोप से संबंधित कोई तथ्य प्रकट होता है, जो कि उसके विरुद्ध लगाया जाए, तो उसकी बाबत समुचित रूप से यह समझा जा सकता है कि उसने अपने आपको पुलिस के समक्ष अभ्यर्पित कर दिया है, तथ्य संबंध प्रकटीकरण की बाबत साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 का फायदा प्राप्त करने का दावा करें । इस नियम के विस्तृत आधार की बाबत यह बताया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46 में किसी व्यक्ति की बाबत यह कहे जाने के पूर्व कि उसे अभिरक्षा में ले लिया गया है, कोई औपचारिकता अनुध्यात नहीं है : शब्दों या कार्यवाही द्वारा किसी व्यक्ति द्वारा अभिरक्षा के लिए समर्पित करना पर्याप्त है । उसी प्रकार के कारणों से हम इस बात से सहमत होने में असमर्थ हैं कि अग्रिम जमानत देने के उस दशा में इनकार किया जाना चाहिए कि संहिता की धारा 167(2) के अधीन अपराधी का पुलिस की अभिरक्षा के लिए रिमाण्ड किए जाने के वास्ते समुचित मामला अन्वेषण करने वाले अधिकरण द्वारा बनाया गया है ।

* * * * *

21. उच्च न्यायालय ने अपने चौथे प्रतिपादन में यह कहा है कि धारा 437 में उल्लिखित परिसीमाओं के अलावा अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए, याची को 'विशेष मामला' अवश्य ही बनाना चाहिए । वस्तुतः, इसके परिणामस्वरूप धारा 438 द्वारा प्रदत्त श्रेयस्कर शक्ति निरर्थक हो जाती है । यह दर्शित करने की उत्सुकता के कारण, जो कि

अन्यथा न्यायोचित है कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति 'अनियंत्रित नहीं है या उसे इच्छित दिशा में मोड़ा जा सकता है', उच्च न्यायालय ने शक्ति को ऐसे निर्बंधन के अध्यधीन कर दिया है, जिसका प्रभाव उस शक्ति को पूर्णतया अनियंत्रित करना होगा । यह कहना कि आवेदक को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए 'विशेष मामला' बनाना चाहिए, वास्तव में कुछ भी कहना नहीं है । निस्संदेह, अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए आवेदक को मामला बनाना पड़ता है । किंतु इसके आगे और नहीं जाया जा सकता और यह नहीं कहा जा सकता है कि उसे 'विशेष मामला' अवश्य ही बनाना चाहिए । हमारी समझ में यह बात नहीं आती है कि धारा 438 के उपबंधों के बारे में यह संदेह क्यों किया जाए कि इनमें परिवर्तनशील या विस्फोटक जैसी कोई बात मौजूद है, जिसके संबंध में ऐसी सर्वाधिक सतर्कता और सावधानी के साथ जिसकी कल्पना की जा सकती है, कार्यवाही की जानी चाहिए । न्यायिक शक्ति का बुद्धिमानी के साथ प्रयोग करने के परिणामस्वरूप आवश्यक रूप से उन बुरे परिणामों से बचाव हो जाता है, जो उसके असंयत उपयोग के कारण होना संभाव्य है । प्रत्येक प्रकार के न्यायिक विवेकाधिकार का उपयोग, उस मामले की जिसके संबंध में उसका प्रयोग करना अपेक्षित है, चाहे जो भी प्रकृति हो, सम्यक् सतर्कता और सावधानी के साथ करना होता है । वास्तव में, जिस संदर्भ में विवेकाधिकार का प्रयोग करना अपेक्षित है, उसका पता होना और उसके उपयोग के युक्तियुक्त रूप से पूर्वानुमान किए जाने योग्य परिणामों का पता होना, न्यायिक विवेकाधिकार के प्रज्ञापूर्ण प्रयोग का प्रमाणांकन है । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति को हौवा नहीं बनाया जाना चाहिए ।

22. प्रतिपादन सं. 1 द्वारा उच्च न्यायालय का यह कहना है कि धारा 438 द्वारा प्रदत्त शक्ति 'असाधारण स्वरूप की है और उसका प्रयोग केवल आपवादिक मामलों में बहुत ही कम किया जाना चाहिए ।' उस शक्ति को असाधारण स्वरूप की शक्ति वर्णन करना कदाचित् ठीक हो सकता है, क्योंकि मामूली तौर से धारा

437 या धारा 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन किया जाता है । इन धाराओं में किसी ऐसे व्यक्ति को, जो कि पुलिस की अभिरक्षा में है, जमानत अनुदत्त करने की या उससे इनकार करने की शक्ति के संबंध में उपबंध किया गया है और वह ऐसी मामूली स्थिति में, जिसमें साधारणत: जमानत के लिए आवेदन किया जाता है । किंतु इसके परिणामस्वरूप यह निष्कर्ष न्यायोचित नहीं ठहराता है कि शक्ति का प्रयोग केवल आपवादिक मामलों में किया जाना चाहिए, क्योंकि वह असाधारण स्वरूप की है । वास्तव में हम अनेक बार यह कहेंगे कि सब विवेकाधिकारों का प्रयोग सतर्कता और चौकसी के साथ किया जाना चाहिए, जो कि उसके प्रयोग को न्यायोचित ठहराने वाली परिस्थितियों पर निर्भर है । इससे आगे जाना, और विधान-मंडल द्वारा प्रदत्त विस्तृत शक्ति को आत्मभिरोपित परिसीमाओं की कठोर संहिता के अध्यधीन करना अनावश्यक है ।

* * * * *

26. हमें श्री तारकुण्डे की इस दलील में बहुत ही सार दिखाई पड़ता है कि चूंकि जमानत देने से इनकार करना दैहिक स्वाधीनता से वंचित करने की कोटि में आता है, इसलिए न्यायालय को धारा 438 के विस्तार पर अनावश्यक निर्बंधनों के अधिरोपण के विरुद्ध विशेषकर तब अपना रुख रखना चाहिए, जबकि विधान-मंडल ने उस धारा के उपबंधों पर ऐसा कोई भी निर्बंधन अधिरोपित नहीं किया है । धारा 438 ऐसा प्रक्रियात्मक उपबंध है जिसका संबंध ऐसे व्यक्ति की दैहिक स्वाधीनता से है जो कि निर्दोषिता की उपधारणा का फायदा प्राप्त करने का हकदार है, क्योंकि वह अग्रिम जमानत के लिए प्रस्तुत अपने आवेदन की तारीख को, ऐसे अपराध से दोषसिद्ध नहीं किया गया है जिसके संबंध में वह जमानत प्राप्त करने की ईप्सा कर रहा है । ऐसे निर्बंधनों और शर्तों को जो कि धारा 438 में मौजूद नहीं है, अत्युदार रूप से अधिरोपित करने के परिणामस्वरूप उसके उपबंध सांविधानिक रूप से आलोचना के विषय हो जाएंगे, क्योंकि दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार अयुक्तियुक्त

निर्बंधनों के अनुपालन पर निर्भर नहीं रखा जा सकता । धारा 438 में अन्तर्विष्ट फायदाप्रद उपबंध को अवश्य ही संरक्षा प्रदान की जानी चाहिए, किंतु उन्हें नष्ट नहीं कर दिया जाना चाहिए । **मेनका गांधी वाले मामले** {[1979] 1 उम. नि. प. 243 = (1978) 1 एस. सी. सी. 248} में किए गए विनिश्चय के पश्चात्, इस संबंध में कोई भी संदेह नहीं रह सकता है कि संविधान के अनुच्छेद 21 की चुनौती का मुकाबला करने की दृष्टि से किसी व्यक्ति की स्वाधीनता से उसे वंचित करने के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को उचित, न्यायोचित और युक्तियुक्त होना चाहिए । जिस रूप में विधान-मंडल ने धारा 438 की कल्पना की है, उस पर इस आधार पर आपत्ति नहीं की जा सकती है कि उसमें ऐसी प्रक्रिया विहित की गई है जो कि अन्यायोचित या अनुचित है । हमें किसी भी स्थिति में उसमें उन शब्दों की, जो कि उसमें मौजूद नहीं है, मौजूदगी की बात कह कर उसे सांविधानिक चुनौती का विषय नहीं बनाना चाहिए ।

* * * * *

33. अत: हम उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को, बुद्धिमतापूर्ण और सावधानीपूर्ण रीति से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, जिसे करने के लिए वे अपने लंबे प्रशिक्षण और अनुभव के कारण वैचारिक दृष्टि से उपयुक्त हैं, धारा 438 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए छोड़ देना अधिक अच्छा समझेंगे । न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति इन न्यायालयों को वस्तुपरक रूप से और जमानत अनुदत्त करने की बात को लागू होने वाले सिद्धांतों के अनुरूप, जो कि वर्षों से मान्यताप्राप्त हैं, कार्य करने के लिए उन पर विश्वास करके अधिक हो सकती है, अपेक्षाकृत इसके कि उन्हें अपने विवेकाधिकार के प्रयोग से वंचित कर दिया जाए, जो विधान-मंडल ने साधारण प्रयोज्यता के अनम्य नियम अधिकथित करके उनको प्रदत्त किया है । किसी कानून को उस रूप में मानना जिस रूप में कि वह प्राप्त होता है, न केवल आम बात है, बल्कि पुरानी बात भी है और वह इस आधार पर है

कि कुछ भी हो, 'विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि के अनुसार' किसी विशिष्ट अभिव्यक्ति का प्रयोग करना ठीक समझा है । उपयोगी रूप से कोई परंपरा विकसित हो सकती है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय की बुद्धि के अनुसार अपनी वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विशेषकर उस समय उन पर विश्वास किया जा सकता है, जबकि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि के अनुसार विवेकाधिकारों के प्रयोग को उनकी देखरेख में सौंपा हो । यदि वे गलती करते हैं तो वे ठीक किए जाने के दायी हैं ।

34. यहीं पर यह मामला समाप्त होना चाहिए किंतु किन्हीं ऐसे मुद्दों को स्पष्ट करना आवश्यक है जिसके परिणामस्वरूप कुछ गलतफहमियां उत्पन्न हुई हैं ।

35. संहिता की धारा 438(1) में ऐसी शर्त अधिकथित है, जिसकी पूर्ति अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के पूर्व करनी पड़ती है । आवेदक को यह अवश्य ही दर्शित करना चाहिए कि उसके विश्वास करने का कारण है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है । 'विश्वास करने का कारण' अभिव्यक्ति के उपयोग से यह दर्शित होता है कि यह विश्वास कि आवेदक को उस प्रकार गिरफ्तार किया जा सकता है, युक्तियुक्त आधारों पर आधारित होना चाहिए । मात्र 'भय' 'विश्वास' नहीं है, जिस कारण से आवेदक के लिए यह दर्शित करना ही काफी नहीं है कि उसके मन में किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई उस पर ऐसा अभियोग लगाने जा रहा है, जिसके अनुसरण में गिरफ्तार किया जा सकता है । उन आधारों को, जिन पर आवेदक का यह विश्वास आधारित है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है, न्यायालय द्वारा वस्तुपरक रूप से परीक्षा किए जाने के लायक होना चाहिए, क्योंकि केवल तभी न्यायालय यह अवधारित कर सकता है कि क्या आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे इस प्रकार गिरफ्तार किया जा सकता है । अत: स्पष्ट और साधारण अभिकथनों के आधार पर धारा 438 (1) का सहारा इस प्रकार नहीं लिया जा सकता, मानो कि किसी व्यक्ति को संभावित गिरफ्तारी के विरुद्ध शाश्वत् रूप से

लैस किया गया हो । अन्यथा, अग्रिम जमानत के लिए किए जाने वाले अनेक आवेदन किसी भी स्थिति में इतने अधिक होंगे, जितने कि वयस्क लोग होते हैं । अग्रिम जमानत किसी व्यक्ति की स्वाधीनता को सुनिश्चित करने की युक्ति है; यह न तो अपराध करने का पासपोर्ट है और न ही संभाव्य या असंभाव्य किसी या सभी प्रकार के अभियोगों के विरुद्ध ढाल है ।

36. द्वितीयतः, यदि अग्रिम जमानत के लिए आवेदन उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो उसे इस प्रश्न पर अपनी बुद्धि का प्रयोग अवश्य ही करना चाहिए और यह अवश्य विनिश्चित करना चाहिए कि ऐसा अनुतोष देने के लिए मामला बनाया गया है । वह संहिता की धारा 437 के अधीन संबंधित मजिस्ट्रेट के विनिश्चय के लिए उस प्रश्न और तब के लिए नहीं छोड़ सकता, जब कभी ऐसा अवसर आए । ऐसा रास्ता अपनाने से धारा 438 का उद्देश्य ही विफल हो जाएगा ।

37. तृतीयतः, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल करना धारा 438 के अधीन शक्ति के प्रयोग के लिए पूर्ववर्ती शर्त नहीं है । युक्तियुक्त विश्वास पर आधारित संभाव्य गिरफ्तारी की सन्निकटता की बाबत यह दर्शित किया जा सकता है कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट अभी फाइल न भी की गई हो, तब भी वह विद्यमान है ।

38. चतुर्थतः, जब तक कि आवेदक को गिरफ्तार न कर लिया गया हो, अग्रिम जमानत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद भी अनुदत्त की जा सकती है ।

39. पांचवीं बात यह है कि धारा 438 के उपबंधों का सहारा अभियुक्त की गिरफ्तारी के बाद नहीं लिया जा सकता । ऐसे अभियुक्त को, जो गिरफ्तार कर लिया गया है, 'अग्रिम जमानत' अनुदत्त करना अपने आप में वहां तक परस्पर विरोधी है, जहां तक कि ऐसे अपराध या अपराधों का जिसके या जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है, संबंध है । गिरफ्तारी के बाद अभियुक्त को संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन अपने उपचार की

ईप्सा उस दशा में करनी चाहिए, यदि वह उस अपराध या उन अपराधों के संबंध में, जिसके या जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया गया है, जमानत पर छोड़ दिया जाना चाहता है ।

40. हमने यह मत व्यक्त किया है कि उच्च न्यायालय ने केवल एक ऐसा प्रतिपादन विरचित किया है, जिससे कि हम सहमत हैं । वह प्रतिपादन सं. (2) है । हम इस बात से सहमत हैं कि अग्रिम जमानत से संबंधित सर्वग्राही आदेश (ब्लैंकेट आर्डर) साधारण रूप से नहीं दिया जाना चाहिए । यह बात इस धारा की भाषा से ही बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है, जो कि, जैसा कि ऊपर विवेचन किया जा चुका है, आवेदक से यह दर्शित करने की अपेक्षा करती है कि 'उसके पास यह विश्वास करने का कारण है' कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है । किसी विश्वास के युक्तियुक्त आधारों पर आधारित होने की बात केवल तभी कही जा सकती है, यदि ऐसी कोई ठोस बात हो, जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि आवेदक की यह आशंका कि उसे गिरफ्तार किया जा सकता है, वास्तविक है । यही कारण है कि प्रसामान्यत:, धारा 438(1) के अधीन इस प्रभाव का निदेश जारी नहीं किया जाना चाहिए कि आवेदक को 'जब कभी भी गिरफ्तार किया जाएगा और जिस किसी भी अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाएगा' जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । अग्रिम जमानत के 'सर्वग्राही आदेश' से जो बात अभिप्रेत है, वह ऐसा आदेश है जो कि अभिकथित रूप से अवैध किसी भी प्रकार के और हर प्रकार के क्रियाकलाप को वस्तुत: ऐसी किसी भी घटना को, जो कि संभाव्य या असंभाव्य हो, और जिसके संबंध में कोई भी ठोस जानकारी संभवत: नहीं मिल सकती, अपनी परिधि में लेने या संरक्षित करने के आवरण के रूप में कार्य करता है । धारा 438(1) के अधीन निदेश का तर्क-आधार युक्तियुक्त आधारों पर आधारित आवेदक का यह विश्वास है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है । आवेदक से यह प्रत्याशा करनी अवास्तविक है कि वह अपना आवेदन उतनी अति सावधानी के साथ लिखेगा, जितनी कि किसी सिविल मामले में दिए जाने वाले अभिवचन में बरती जाती है, और इस प्रकार की अपेक्षा इस

धारा की नहीं है । किंतु आवेदक द्वारा विनिर्दिष्ट घटनाओं और तथ्यों को इस दृष्टि से प्रकट करना चाहिए, जिससे कि न्यायालय उसके विश्वास की युक्तियुक्तता के संबंध में निर्णय करने में समर्थ हो सके, जिसकी विद्यमानता इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों के प्रयोग के लिए अनिवार्य शर्त है ।

41. इस तथ्य के अलावा कि कानून की भाषा यह अर्थान्वयन करने के लिए विवश करती है, इस बात पर जोर देने में यह महत्वपूर्ण सिद्धांत अंतर्निहित है कि उन तथ्यों को जिनके आधार पर धारा 438(1) के अधीन निदेश दिए जाने की ईप्सा की जाती है, स्पष्ट और विनिर्दिष्ट होना चाहिए, न कि अस्पष्ट और साधारण । उसी सिद्धांत का पालन करके ही किसी व्यक्ति की स्वाधीनता के अधिकार के और पुलिस को रिपोर्ट किए गए अपराधों में उसके द्वारा अन्वेषण करने के अधिकार के बीच संभावित टकराव से बचा जा सकता है । अग्रिम जमानत के सर्वग्राही आदेश के परिणामस्वरूप अन्वेषण के मामले में पुलिस के अधिकार और कर्तव्य, दोनों में ही गंभीर हस्तक्षेप होना निश्चित है क्योंकि इस बात का ध्यान न रखते हुए कि आवेदक द्वारा किस प्रकार का अपराध किए जाने की बाबत अभिकथन किया गया है, और कब किया गया है, जमानत का ऐसा आदेश जिसमें अभिकथित रूप से अवैध किसी भी प्रकार के क्रियाकलाप की परिकल्पना की गई है, आवेदक को गिरफ्तार करने से पुलिस को तब भी निवारित करेगा, यदि वह जनता की उपस्थिति में ही कोई अपराध, उदाहरणार्थ हत्या करता है । तब, ऐसा आदेश अव्यवस्था का अनुज्ञापत्र हो सकता है और ऐसे अपराधों के, जिनकी बाबत कदाचित् पहले से नहीं बताया जा सकता था, जब आदेश किया गया था, शीघ्र अन्वेषण को अवरुद्ध करने का साधन हो सकता है । अत: ऐसे न्यायालय को, जो कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करता है, ऐसे अपराध या अपराधों को विनिर्दिष्ट करने की सावधानी बरतनी चाहिए, जिसके या जिनके संबंध में ही वह आदेश प्रभावी होगा । उस शक्ति का प्रयोग शून्य में नहीं किया जाना चाहिए ।

42. हमारे समक्ष धारा 438(1) के अधीन जमानत के आदेश किए जाने के संबंध में कतिपय छोटे-छोटे नमूनों के संबंध में कुछ विवेचन किया गया था । क्या लोक अभियोजक को सूचना दिए बिना उस धारा के अधीन कोई आदेश किया जा सकता है ? ऐसा आदेश किया जा सकता है । किंतु सूचना लोक अभियोजक या सरकारी अधिवक्ता को तुरन्त जारी की जानी चाहिए और जमानत संबंधी प्रश्न की पुन: परीक्षा पक्षकारों की संबंधित दलीलों की रोशनी में की जानी चाहिए । अंतरिम आदेश को भी उस धारा की अपेक्षाओं के अनुरूप ही होना चाहिए और उपयुक्त शर्तें उस प्रक्रम में भी आवेदक पर अधिरोपित की जानी चाहिए । क्या धारा 438(1) के अधीन किए गए आदेश के प्रवर्तन को निश्चित समय तक सीमित रहना चाहिए ? यह आवश्यक नहीं है । यदि ऐसा करने के लिए कारण मौजूद हैं, तो न्यायालय आदेश की परिधि के भीतर आने वाले विषय के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद भी संक्षिप्त कालावधि तक आदेश के प्रवर्तन को सीमित कर सकेगा । ऐसे मामलों में आवेदक को इस बात का आदेश दिया जा सकता है कि वह संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन यथापूर्वोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद युक्तियुक्त रूप से संक्षिप्त कालावधि के भीतर जमानत का आदेश अभिप्राप्त कर ले । किंतु इस बात का अनुसरण अपरिवर्तनीय नियम के रूप में किए जाने की आवश्यकता नहीं है । प्रसामान्य नियम किसी कालावधि के संबंध में आदेश के प्रवर्तन को सीमित करना नहीं होना चाहिए ।

43. पिछले कुछ वर्षों के दौरान इस न्यायालय ने, विभिन्न उच्च न्यायालयों द्वारा पारित आदेश के विरुद्ध की गई अपीलों की बाबत कार्यवाही करते हुए धारा 438(2)(i), (ii) और (iii) में उपवर्णित शर्तें अधिरोपित करके अनेक व्यक्तियों को अग्रिम जमानत अनुदत्त की है । इसके अलावा, न्यायालय ने, उन मामलों में से अधिकांश में यह निदेश दिया है कि (क) आवेदक को संक्षिप्त कालावधि के लिए पुलिस के समक्ष अपने आपको उस दशा में

अभ्यर्पित कर देना चाहिए, यदि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन कुछ पता लगाया जाना है या (ख) यह कि उसकी बाबत यह समझा जाना चाहिए कि उसने उस दशा में स्वयं ही अभ्यर्पित कर दिया है, यदि ऐसा पता लगाया जाना है । कतिपय, आपवादिक मामलों में, न्यायालय ने, अपने समक्ष प्रस्तुत सामग्री को देखते हुए, यह निदेश दिया है कि अग्रिम जमानत का आदेश, उसकी परिधि के भीतर आने वाले विषयों के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद एक सप्ताह या उसके आस-पास की कालावधि तक ही प्रवर्तन में रहेगा । कुल मिलाकर इन आदेशों में समाधानकारी रीति से कार्य किया है, जिसके परिणामस्वरूप संबंधित व्यक्तियों को कम से कम असुविधा हुई और पुलिस के अन्वेषण करने के अधिकारों में कम से कम हस्तक्षेप हुआ है । न्यायालय ने व्यक्ति की दैहिक स्वाधीनता के अधिकार और पुलिस के अन्वेषण करने के अधिकार के बीच उन आदेशों के माध्यम से संतुलन कायम किया है, जिन अपीलार्थियों को विभिन्न न्यायालयों ने अग्रिम जमानत देने से इनकार किया था, उन्हें यह न्यायालय संहिता की धारा 438(1) के अधीन बहुत पहले ही छोड़ चुका है ।"

8. **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में का निर्णय बोधगम्य था और अग्रिम जमानत के आदेशों की अवधि के बारे में अगले अढ़ाई दशकों तक कोई आशंकाएं परिलक्षित नहीं हुई थी । ऐसा होते हुए भी, **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में पहली बार एक विसम्मत टिप्पण दिया गया प्रतीत होता है । **सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह कहा गया था कि अग्रिम जमानत प्रदान करने का अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि नियमित न्यायालय, जिसे अपराधी का विचारण करना है, "दरकिनार" कर दिया जाएगा । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण का अनुमोदन किया, जिसने जमानत के जारी रहने की बाह्य तारीख नियत की थी और यह भी निदेश दिया था कि याची को पर्यवसान के उपरांत, जमानत के नियमित न्यायालय में समावेदन करना चाहिए । **सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले

---

[1] (1996) 1 एस. सी. सी. 667.

में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया सही थी, क्योंकि :-

> "अवश्य यह अनुभूति होनी चाहिए कि जब सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय अग्रिम जमानत प्रदान कर रहा होता है, यह उस प्रक्रम पर प्रदान की जाती है, जब अन्वेषण अपूर्ण होता है और इसलिए अभिकथित अपराधी के विरुद्ध साक्ष्य की प्रकृति के बारे में जानकारी नहीं होती है । अत: यह आवश्यक है कि अग्रिम जमानत के ऐसे आदेश केवल सीमित अवधि के लिए होने चाहिएं और सामान्यतया उस अवधि या विस्तारित अवधि के पर्यवसान पर अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले न्यायालय को यह नियमित न्यायालय पर छोड़ देना चाहिए कि वह अन्वेषण के आगे बढ़ने या आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिए जाने के पश्चात् उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के मूल्यांकन के आधार पर मामले पर विचार करे ।"
>
> (बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

9. सलाउद्दीन वाले मामले में के दृष्टिकोण और तर्कणा को इस न्यायालय द्वारा **के. एल. वर्मा** बनाम **राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में लागू किया गया था और दोहराया गया था । उस विनिश्चय में (के. एल. वर्मा) इस उपबंध की इस व्याप्ति को भी स्पष्ट किया गया था कि धारा 438 के अधीन संरक्षा का उपभोग करने वाले अभियुक्त का नियमित जमानत का आवेदन जब तक नियमित न्यायालय के समक्ष लंबित है, उसे अभ्यर्पण करने की आवश्यकता नहीं है और उसकी संरक्षा धारा 437 या धारा 439 के अधीन नियमित जमानत के लिए आवेदन का निपटारा होने तक जारी रहेगी और उस स्त्री या पुरुष को न्यायालय द्वारा यथा निदेशित कतिपय अवधि के पर्यवसान के पश्चात् या यदि आरोप पत्र प्रस्तुत कर दिया जाता है, तो एक आवेदन (अग्रिम जमानत के लिए) करना चाहिए क्योंकि नियमित न्यायालयों की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । **के. एल. वर्मा**[1] वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :-

---

[1] (1998) 9 एस. सी. सी. 348.

"3. ..... इस न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि अग्रिम जमानत अजमानतीय मामलों में गिरफ्तारी की प्रत्याशा में प्रदान की जाती है, किंतु इसका यह अर्थ नहीं है कि नियमित न्यायालय, जिसे अपराधी का विचारण करना है, दरकिनार कर दिया जाए । ..... इसके द्वारा, न्यायालय जो संप्रेषित करना चाहता था वह यह था कि अग्रिम जमानत का आदेश विचारण के अंत तक लागू नहीं रहता है अपितु यह सीमित अवधि के लिए होना चाहिए क्योंकि नियमित न्यायालय की उपेक्षा नहीं की जा सकती है । सीमित अवधि का अवधारण मामले के तथ्यों को और अभियुक्त को नियमित न्यायालय में जमानत के लिए समावेदन करने के लिए पर्याप्त समय देने और नियमित न्यायालय को जमानत के आवेदन का अवधारण करने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए । दूसरे शब्दों में, जब तक एक या दूसरे प्रकार से जमानत के आवेदन का निपटारा नहीं हो जाता है, न्यायालय अभियुक्त को अग्रिम जमानत पर रहने की अनुज्ञा दे सकता है .....। इस विनिश्चय का आशय यह संप्रेषित करना नहीं था कि ज्यों ही अभियुक्त को नियमित न्यायालय के समक्ष पेश किया जाता है, अग्रिम जमानत का अंत हो जाता है भले ही न्यायालय को अभी जमानत के प्रश्न का गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करना है । सलाउद्दीन वाले मामले में के विनिश्चय [(1996) 1 एस. सी. सी. 667 को इस प्रकार समझा जाना चाहिए ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

10. पुनः, **सुनीता देवी, निर्मलजीत कौर** और **अदरी धरन दास** (उपर्युक्त) वाले मामले बाद के तीन ऐसे विनिश्चय हैं जहां इस न्यायालय ने सलाउद्दीन वाले मामले में के विनिश्चयाधार को लागू किया और इस चिंता को दोहराया कि धारा 438 की "संरक्षात्मक छत्रछाया" को पूर्ववर्ती मामले (सलाउद्दीन) में उपदर्शित समयावधि से परे या आवेदक द्वारा उच्च न्यायालयों तक उपचारों का उपभोग कर लेने तक विस्तारित नहीं किया जा सकता है और ऐसा करने का अर्थ यह होगा कि नियमित न्यायालय की उपेक्षा कर दी जाएगी । इस न्यायालय ने यह दोहराया कि

यदि आवेदक को धारा 438 के अधीन आदेश का फायदा तब तक अनुज्ञात किया जाता है, जब तक वह उच्चतर न्यायालयों तक नियमित जमानत के उपचार का उपभोग नहीं कर लेता है, तो धारा 439 एक अप्रचलित नियम बनकर रह जाएगी । **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड** बनाम **जे. जे. मेनन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने **सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले में के तर्काधार का इस सीमा तक अनुसरण और लागू किया था कि अग्रिम जमानत प्रदान करते समय अवश्य कतिपय परिसीमाएं अधिरोपित की जानी चाहिएं । यह एक नई सूक्ति भी जोड़ी गई थी कि यदि पुलिस द्वारा अभियुक्त के विरुद्ध मामला "बनाया जाता" है और उसका नाम "अभियुक्त के रूप में आरोप पत्र में सम्मिलित किया गया है, तो अभियुक्त को न्यायालय की अभिरक्षा में अभ्यर्पण करना चाहिए और नियमित जमानत के लिए प्रार्थना करनी चाहिए । अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले आदेश के आधार पर अभियुक्त, जिसके विरुद्ध आरोप विरचित किया गया है, विचारण न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने से नहीं बच सकता है.....।" न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि :-

> "19. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के उद्देश्य को इस न्यायालय और उच्च न्यायालयों द्वारा बारम्बार स्पष्ट किया गया है, जिसका अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति को शिकायतकर्ता के वैमनस्य या व्यक्तिगत वैर की तुष्टि के लिए तंग या अपमानित नहीं किया जाना चाहिए । किंतु साथ ही, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के उपबंधों का आश्रय अभियुक्त को अन्वेषण पूर्ण हो जाने के पश्चात् और यदि उसके विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया है, न्यायालय में अभ्यर्पण करने से छूट देने के लिए भी नहीं लिया जा सकता है । ऐसा निर्वचन दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के उपबंधों का एकदम गलत अर्थ निकालने की कोटि में आएगा, चूंकि यद्यपि अभियुक्त के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल भी कर दिया गया हो और उसके विरुद्ध आरोप भी विरचित कर दिया गया है, तो भी हो सकता है वह फिर भी न्यायालय के समक्ष यहां तक कि विचारण के दौरान भी उपसंजात ही न हो ।

---

[1] (2010) 1 एस. सी. सी. 679.

20. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में अन्वेषण के प्रक्रम पर गिरफ्तार करना अनुध्यात है और अभियुक्त को जमानत पर छोड़ दिए जाने के लिए एक क्रियाविधि उपबंधित है, चाहे उसे अन्वेषण की अवधि के दौरान गिरफ्तार किया जाए । जब एक बार अन्वेषण से उसके विरुद्ध मामला बनता है और उसे आरोप पत्र में अभियुक्त के रूप में सम्मिलित किया जाता है तो उसे न्यायालय की अभिरक्षा में अभ्यर्पण करना चाहिए और नियमित जमानत के लिए प्रार्थना करनी चाहिए । अग्रिम जमानत प्रदान करने वाले आदेश के आधार पर अभियुक्त, जिसके विरुद्ध आरोप विरचित किया गया है, विचारण न्यायालय के समक्ष उपसंजात होने से बच नहीं सकता है ।"

11. इन विनिश्चयों को ध्यान में रखते हुए, जिनमें धारा 438 के अधीन व्याप्ति और अधिकारिता को संकीर्ण किया गया, महत्रे वाले मामले में के निर्णय में यह उल्लेख किया गया कि सिब्बिया वाले मामले में निर्णय पांच नयायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा दिया गया था, जिससे यह उपदर्शित होता है कि अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए निर्बंधनों का अधिरोपित करना सदैव आवश्यक नहीं है । इस न्यायालय ने महत्रे वाले मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

".....वे आदेश **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ के निर्णय द्वारा अधिकथित विधि के प्रतिकूल हैं । राष्ट्रीय पुलिस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार, गिरफ्तार करने की शक्ति का समग्र रूप से दुरुपयोग किया जाता है और लोगों की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में सन्निविष्ट है, का स्पष्ट रूप से अतिक्रमण होता है, तब न्यायालयों को इस पर गंभीर विचार करने की आवश्यकता है । जब दोषसिद्धि की दर स्वीकृत रूप से दस प्रतिशत से कम है, तब पुलिस को अभियुक्त को गिरफ्तार करने में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए । न्यायालयों को जमानत के आवेदन पर विचार करते समय समाज के हित के मुकाबले व्यक्तिगत स्वतंत्रता के बीच स्पष्ट संतुलन दांडिक विधि-शास्त्र के इस मूलभूत सिद्धांत का पालन करते हुए बनाए रखने की

कोशिश करनी चाहिए कि अभियुक्त के तब तक निर्दोष होने की उपधारणा की जाती है, जब तक सक्षम न्यायालय द्वारा उसे दोषी नहीं पाया जाता है ।

94. अभियुक्त के विरुद्ध फाइल की गई शिकायत की संपूर्ण रूप से इस पहलू सहित परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है कि क्या शिकायतकर्ता ने पूर्ववर्ती अवसर पर मिथ्या या तुच्छ शिकायत फाइल की थी या नहीं । न्यायालय को इस तथ्य की भी परीक्षा करनी चाहिए कि क्या अभियुक्त और शिकायतकर्ता के बीच कोई पारिवारिक विवाद है या नहीं और शिकायतकर्ता को अवश्य स्पष्ट रूप से यह बता देना चाहिए कि यदि शिकायत मिथ्या या तुच्छ पायी जाती है, तो उसके विरुद्ध विधि के अनुसार कड़ी कार्रवाई की जाएगी । यदि शिकायतकर्ता और अन्वेषक अधिकारी के बीच मौनानुकूलता सिद्ध हो जाती है, तब अन्वेषक अधिकारी के विरुद्ध विधि के अनुसार कार्रवाई की जाए ।

95. आरोप की गंभीरता और अभियुक्त की सटीक भूमिका को अवश्य उचित रूप से समझा जाना चाहिए । गिरफ्तारी से पूर्व, गिरफ्तार करने वाले अधिकारी को अवश्य उन विधिमान्य कारणों को मामला डायरी में अभिलिखित करना चाहिए, जिनके आधार पर अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया है । आपवादिक मामलों में, कारणों को गिरफ्तारी के व्यवहित पश्चात् अभिलिखित किया जा सकता है, जिससे कि जमानत के आवेदन पर विचार करने के समय गिरफ्तार करने वाले अधिकारी की अभ्युक्तियों और मताभिव्यक्तियों का भी न्यायालय द्वारा उचित रूप से मूल्यांकन किया जा सके ।

96. न्यायालयों के लिए यह अत्यावश्यक है कि सावधानीपूर्वक और सतर्क रहते हुए सूक्ष्मता से मामले के तथ्यों का मूल्यांकन करें । विवेकाधिकार का प्रयोग अवश्य उपलब्ध सामग्री और विशिष्ट मामले के तथ्यों के आधार पर किया जाना चाहिए । उन मामलों में, जहां न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि अभियुक्त अन्वेषण में सम्मिलित हुआ है और वह अन्वेषक

अभिकरण का पूरी तरह से सहयोग कर रहा है तथा उसके फरार होने की संभावना नहीं है, तो उस स्थिति में, अभिरक्षा में लेकर परिप्रश्न करने से बचना चाहिए ।

97. अत्यधिक बदनामी, अपमान और कलंक गिरफ्तारी से जुड़े होते हैं । गिरफ्तारी से न केवल अभियुक्त के लिए अपितु संपूर्ण परिवार के लिए और कई बार संपूर्ण समाज के लिए बहुत सारे गंभीर परिणाम निकलते हैं । अधिकांश लोग दोषसिद्धि-पूर्व के प्रक्रम पर हुई गिरफ्तारी या दोषसिद्धि-पश्च के प्रक्रम पर हुई गिरफ्तारी के बीच कोई विभेद नहीं करते हैं । क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन शक्तियां दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 की परिसीमाओं के अध्यधीन हैं ?

98. विचार के लिए जो प्रश्न उद्भूत होता है, वह यह है कि क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन शक्तियां अनियंत्रित या दिशाहीन हैं या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 की सभी परिसीमाओं के अध्यधीन है ? सिब्बिया वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 में वर्णित परिसीमाओं के विद्यमान होने का अर्थ लगाने का कोई औचित्य नहीं है । इस न्यायालय ने यह भी मत व्यक्त किया कि इस धारा की परिपूर्णता को अवश्य पूर्ण व्याप्ति दी जानी चाहिए । संविधान न्यायपीठ ने यह भी मत व्यक्त किया कि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया यह मत सही नहीं है कि अभियुक्त को अग्रिम जमानत प्रदान करने की शक्ति का प्रयोग करने के लिए एक 'विशेष मामला' बनाना आवश्यक है । यह मत, असल में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 द्वारा प्रदत्त हितकारी शक्ति को कम करके एक अप्रचलित नियम बना देता है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि 'हमें दिखाई नहीं पड़ता कि क्यों दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के उपबंधों पर उनमें कोई ऐसी अस्थिर या उत्तेजक बात अंतर्विष्ट होने के रूप में संदेह किया जाए, जिसे कल्पित अत्यधिक सावधानी और सतर्कता से संभालने की आवश्यकता है ।'

99. जैसा कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में स्पष्ट रूप से मत व्यक्त किया गया है कि न्यायिक शक्ति का बुद्धिमानी के साथ प्रयोग करने के परिणामस्वरूप आवश्यक रूप से उन बुरे परिणामों से बचाव हो जाता है, जो उसके असंयत उपयोग के कारण होना संभाव्य है । प्रत्येक प्रकार के न्यायिक विवेकाधिकार का उपयोग, उस मामले की जिसके संबंध में उसका प्रयोग करना अपेक्षित है, चाहे जो भी प्रकृति हो, सम्यक् सतर्कता और सावधानी के साथ करना होता है । वास्तव में, जिस संदर्भ में विवेकाधिकार का प्रयोग करना अपेक्षित है, उसका पता होना और उसके उपयोग के युक्तियुक्त रूप से पूर्वानुमान किए जाने योग्य परिणामों का पता होना, न्यायिक विवेकाधिकार के प्रज्ञापूर्ण प्रयोग का प्रमाणांकन है । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति को हौवा नहीं बनाया जाना चाहिए ।

100. संविधान न्यायपीठ ने उसी निर्णय में यह भी मत व्यक्त किया था कि ऐसा व्यक्ति जो कि अग्रिम जमानत की ईप्सा करता है, ऐसा स्वतंत्र व्यक्ति रहता है जो कि निर्दोष होने की उपधारणा किए जाने का हकदार होता है । वह, उन शर्तों को स्वीकार करके जिन्हें कि न्यायालय अधिरोपित करना ठीक समझे, इस आश्वासन पर विचार करते हुए कि यदि वह गिरफ्तार किया जाएगा, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ।

101. कार्यवाही की उचित प्रक्रिया यह होनी चाहिए कि अभिलेख पर उपलब्ध प्रकथनों और अभियोग का मूल्यांकन करने के पश्चात् यदि न्यायालय अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए तैयार है, तब अंतरिम जमानत अनुदत्त की जाए और लोक अभियोजक को सूचना जारी की जाए । लोक अभियोजक को सुनने के पश्चात् न्यायालय या तो जमानत के आवेदन को नामंजूर कर सकता है या जमानत अनुदत्त करने के आरंभिक आदेश की पुष्टि कर सकता है । न्यायालय निश्चित रूप से जमानत अनुदत्त करने के लिए शर्तें अधिरोपित करने का हकदार होगा । लोक अभियोजक या शिकायतकर्ता उसी न्यायालय में किसी भी समय जमानत को

रद्द करने या शर्तों में उपांतरण करने के लिए समावेदन करने के लिए स्वतंत्र होगा यदि न्यायालय द्वारा दी गई स्वतंत्रता का दुरुपयोग किया जाता है । न्यायालय द्वारा अनुदत्त की गई जमानत मामूली तौर पर मामले के विचारण तक जारी रहनी चाहिए ।

102. एक सीमित अवधि के लिए अग्रिम जमानत का आदेश अनुदत्त करना और उसके पश्चात् अभियुक्त को अभ्यर्पण करने के लिए और नियमित जमानत के लिए आवेदन करने का निदेश देना विधायी आशय और **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान के निर्णय के प्रतिकूल है ।

103. यह एक स्थिर विधिक स्थिति है कि जो न्यायालय जमानत अनुदत्त करता है, उसे रद्द करने की भी शक्ति होती है । जमानत अनुदत्त करने या रद्द करने के विवेकाधिकार का प्रयोग या तो अभियुक्त की प्रेरणा पर, लोक अभियोजक या शिकायतकर्ता की प्रेरणा पर किसी निश्चित समय पर नई सामग्री या परिस्थितियां पाए जाने पर किया जा सकता है ।

104. विधान-मंडल का यह आशय पूर्णत: स्पष्ट है कि जमानत अनुदत्त करना या अनुदत्त करने से इनकार करना पूर्ण रूप से वैवेकिक है । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में संविधान न्यायपीठ ने स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि जमानत अनुदत्त करना या इनकार करना वैवेकिक है और यह प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करना चाहिए । संविधान न्यायपीठ ने उक्त मामले में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया है कि हमें वरिष्ठ न्यायालयों अर्थात् उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को यह शक्ति सौंपने के लिए विधान-मंडल की प्रज्ञा का सम्मान करना चाहिए । संविधान न्यायपीठ ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया है :–

> 'अत: हम उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को, बुद्धिमतापूर्ण और सावधानीपूर्ण रीति से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, जिसे करने के लिए वे अपने लंबे

प्रशिक्षण और अनुभव के कारण वैचारिक दृष्टि से उपयुक्त हैं, धारा 438 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए छोड़ देना अधिक अच्छा समझेंगे । न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति इन न्यायालयों को वस्तुपरक रूप से और जमानत अनुदत्त करने की बात को लागू होने वाले सिद्धांतों के अनुरूप, जो कि वर्षों से मान्यताप्राप्त हैं, कार्य करने के लिए उन पर विश्वास करके अधिक हो सकती है, अपेक्षाकृत इसके कि उन्हें अपने विवेकाधिकार के प्रयोग से वंचित कर दिया जाए, जो विधान-मंडल ने साधारण प्रयोज्यता के अनम्य नियम अधिकथित करके उनको प्रदत्त किया है । किसी कानून को उस रूप में मानना जिस रूप में कि वह प्राप्त होता है, न केवल आम बात है, बल्कि पुरानी बात भी है और वह इस आधार पर है कि कुछ भी हो, 'विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि के अनुसार' किसी विशिष्ट अभिव्यक्ति का प्रयोग करना ठीक समझा है । उपयोगी रूप से कोई परंपरा विकसित हो सकती है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय की बुद्धि के अनुसार अपनी वैवेकिक शक्तियों का प्रयोग करने के लिए विशेषकर उस समय उन पर विश्वास किया जा सकता है, जब कि विधान-मंडल ने अपनी बुद्धि के अनुसार विवेकाधिकारों के प्रयोग को उनकी देखरेख में सौंपा हो । यदि वे गलती करते हैं तो वे ठीक किए जाने के दायी हैं ।'

सीमित अवधि के लिए जमानत अनुदत्त करना विधायी आशय और संविधान न्यायपीठ द्वारा घोषित विधि के प्रतिकूल है :

105. जो न्यायालय जमानत अनुदत्त करता है उसे साधारण खंड अधिनियम के उपबंधों के अनुसार जमानत को रद्द करने का अधिकार है किंतु सामान्यतया लोक अभियोजक को सुनने के पश्चात् जब जमानत के आदेश की पुष्टि की जाती है तब जमानत अनुदत्त करने का फायदा उस मामले के विचारण की समाप्ति तक जारी रहना चाहिए ।

106. **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** (उपर्युक्त) वाला निर्णय विधायी आशय और अग्रिम जमानत के उपबंधों की आत्मा के ही प्रतिकूल है और इसके परिणामस्वरूप अधिनियमिति की व्याप्ति पर कृत्रिम और अयुक्तियुक्त निबंधन लगाए गए हैं, जो विधायी आशय के प्रतिकूल हैं ।

107. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत के उपबंध पर निर्बंधन लगाने से संविधान के अनुच्छेद 21 के अधीन प्रत्याभूत अभियुक्त की दैहिक स्वाधीनता सीमित होती है । अधिनियमिति में ऐसी अतिरिक्त मताभिव्यक्ति और ऐसे निर्बंधन जो अधिनियमिति में नहीं पाए जाते हैं, पुन: अयुक्तियुक्त निर्बंधन हैं । ये उस ऋजुता और युक्तियुक्तता पर, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में विवक्षित है, **मेनका गांधी** (उपर्युक्त) वाले मामले में के विनिश्चय के पश्चात् खरे नहीं उतरते हैं, जिसमें न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि संविधान के अनुच्छेद 21 की चुनौती को पूरा करने के लिए किसी व्यक्ति को उसकी स्वाधीनता से वंचित करने के लिए विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया अवश्य ही उचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त होनी चाहिए ।

108. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में उस अवधि के बारे में कोई उल्लेख नहीं किया गया है, जिसके लिए गिरफ्तारी की दशा में जमानत पर छोड़ने के लिए निदेश दिया जा सकता है । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने का आदेश ऐसा निदेश है, जिसमें अभियुक्त को उसकी गिरफ्तारी की दशा में छोड़ देने के लिए विनिर्दिष्ट रूप से दिया जाता है । जब एक बार अग्रिम जमानत के ऐसे आदेश का अभियुक्त द्वारा निष्पादन किया जाता है और उसे जमानत पर छोड़ दिया जाता है, तो संबंधित न्यायालय ऐसी शर्तें अधिरोपित करने में पूर्णतया न्यायोचित होगा, जिनमें अन्वेषण में सम्मिलित होने का निदेश भी है ।

109. इस उपबंध में 'अग्रिम जमानत' अभिव्यक्ति का प्रयोग नहीं किया गया है, अपितु इसमें गिरफ्तारी की दशा में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा जमान पर छोड़ने के लिए

निदेश जारी करना उपबंधित है । सलाउद्दीन वाले मामले के पूर्वोक्त निर्णय के अनुसार, अभियुक्त को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करना चाहिए और केवल उसके पश्चात् वह विचारण न्यायालय द्वारा जमानत अनुदत्त करने के लिए प्रार्थना कर सकता है/कर सकती है । विचारण न्यायालय अभियुक्त को केवल उसके अभ्यर्पित किए जाने के पश्चात् ही छोड़ेगा ।

110. सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में जब विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को छोड़ दिया जाता है, तब अभियुक्त को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने और पुन: नियमित जमानत के आवेदन करने के लिए बाध्य करना अयुक्तियुक्त होगा ।

111. न्यायालय को अवश्य यह ध्यान में रखना चाहिए कि कई बार आवेदक किसी अजमानतीय अपराध के कारित करने के अभियोग पर गिरफ्तार होने की मात्र आशंका के आधार पर अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए समावेदन करते हैं । वास्तव में, अन्वेषण करने वाला या संबंधित अभिकरण हो सकता है, उस आवेदक को अन्यथा गिरफ्तार न करे, जिसने अग्रिम जमानत के लिए आवेदन किया है किंतु केवल इस कारण कि उसने न्यायालय के समक्ष आवेदन किया है और सीमित अवधि के लिए न्यायालय से अनुतोष प्राप्त किया है, उसके पश्चात् उसे विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करना चाहिए और केवल उसके पश्चात् उसके जमानत के आवेदन पर विचार किया जा सकता है तथा अग्रिम जमानत की कालावधि समाप्त हो जाती है, इसके खतरनाक और अशुभ परिणाम हो सकते हैं । आवेदक जो अन्यथा अपनी स्वाधीनता से वंचित नहीं होता केवल इस कारण वंचित हो जाता है कि उसने कोई अजमानतीय अपराध कारित करने के अभियोग पर गिरफ्तार होने की मात्र आशंका के आधार पर अग्रिम जमानत का आवेदन फाइल किया है । ऐसी कोई गिरफ्तारी नहीं की जानी चाहिए क्योंकि ऐसा करना पुलिस अधिकारी के लिए विधि पूर्ण है । गिरफ्तारी की शक्ति होना एक बात है, और इसका प्रयोग करने का औचित्य होना एक बिल्कुल अलग बात है । पुलिस अधिकारी को

उसकी गिरफ्तार करने की शक्ति होने के अलावा गिरफ्तारी को न्यायोचित ठहराने में भी समर्थ होना चाहिए । उक्त निर्णय का यह निष्कर्ष विधायी आशय और उस विधि के प्रतिकूल है जो **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा घोषित की गई है ।

112. सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिरोपित किए गए निर्बंधनों अर्थात् अग्रिम जमानत पर छोड़े गए अभियुक्त को स्वयं को अवश्य ही अभिरक्षा में सुपुर्द करना चाहिए और केवल उसके पश्चात् वह अग्रिम जमानत के लिए आवेदन कर सकता है, की विधिमान्यता दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के मूल आशय और आत्मा के प्रतिकूल है । यह संविधान के अनुच्छेद 21 के भी प्रतिकूल है । ऋजुता और युक्तियुक्तता की कसौटी भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 में विवक्षित है । अभियुक्त को सीमित अवधि के पश्चात् अभ्यर्पण करने के लिए निदेश देना उसे उसकी दैहिक स्वाधीनता से वंचित करने की कोटि में आता है ।

113. **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा स्पष्ट की गई स्थिर विधिक स्थिति यह है कि न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 की परिधि और व्याप्ति पर ऐसे निर्बंधन अधिरोपित नहीं करने चाहिएं, जो विधान-मंडल द्वारा अनुध्यात नहीं किए गए हैं । न्यायालय कानून के उपबंध को इसका निर्वचन करने की आड़ लेकर पुन: उपबंधित नहीं कर सकता है ।

114. ऐसे विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए उस अवधि को सीमित करके जिसके लिए इस धारा के अधीन आदेश अनुदत्त किया जा सकता है, कड़े, अनम्य और कठोर नियम अधिकथित करना अयुक्तियुक्त है । हम **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के निर्णय की कुछ मताभिव्यक्तियों को उद्धृत करना उचित समझते हैं .....।

* * * * *

121. अग्रिम जमानत अनुदत्त करने या इनकार करने के

लिए कोई अनम्य मार्गदर्शक सिद्धांत या कठोर सिद्धांत उपबंधित नहीं किया जा सकता है । हमारा स्पष्ट रूप से यह मत है कि इस संबंध में कठोर और अनम्न मार्गदर्शक सिद्धांतों का उपबंध करने के लिए कोई प्रयास नहीं किया जाना चाहिए । क्योंकि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने या इनकार करने के लिए भविष्य की सभी परिस्थितियों या स्थितियों का स्पष्ट रूप से अवलोकन नहीं किया जा सकता है । विधायी आशय के अनुरूप अग्रिम जमानत अनुदत्त करना या इनकार करना आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करना चाहिए । जैसा कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय में स्पष्ट रूप से यह मत व्यक्त किया गया है कि उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को बुद्धिमतापूर्ण सावधानीपूर्ण रीति से अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए, जिसे करने के लिए वे अपने लंबे परीक्षण और अनुभव के कारण वैचारिक दृष्टि से उपयुक्त हैं, धारा 438 के अधीन अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने के लिए छोड़ देना अधिक अच्छा समझेंगे । किसी भी स्थिति में, यह विधायी आदेश है जिसका हम सम्मान और आदर करने के लिए आबद्ध हैं ।

122. अग्रिम जमानत पर विचार करते समय निम्नलिखित बातों और मानदंडों पर विचार किया जा सकता है :-

'(i) गिरफ्तारी से पूर्व अभियोग की प्रकृति और गंभीरता तथा अभियुक्त की सटीक भूमिका पर उचित रूप से विचार कर लेना चाहिए;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त जिसके अंतर्गत यह तथ्य भी सम्मिलित है कि क्या अभियुक्त ने पूर्व में किसी संज्ञेय अपराधी की बाबत किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किए जाने पर कारावास भुगता है;

(ii) आवेदक के न्याय से भागने की संभाव्यता;

(iv) अभियुक्त द्वारा उसी प्रकार के या अन्य अपराधों के दोहराने की संभाव्यता;

(v) जहां अभियोग आवेदक या आवेदिका को गिरफ्तार करवाकर उसे केवल क्षति पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से लगाए गए हैं;

(vi) अग्रिम जमानत अनुदत्त करने का प्रभाव, विशिष्ट रूप से बड़ी मात्रा के ऐसे मामलों में जिनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग प्रभावित होते हों;

(vii) न्यायालयों को अभियुक्त के विरुद्ध उपलब्ध संपूर्ण सामग्री का अति सावधानीपूर्वक अवश्य ही मूल्यांकन करना चाहिए । न्यायालय को मामले में अभियुक्त की सटीक भूमिका पर भी स्पष्ट रूप से विचार करना चाहिए । ऐसे मामलों में जिनमें अभियुक्त को भारतीय दंड संहिता 34 और 149 की सहायता से आलिप्त किया गया है, न्यायालय को और अधिक सावधानी और सतर्कता से विचार करना चाहिए क्योंकि मामलों में बढ़ा-चढ़ा कर आलिप्त करना सामान्य ज्ञान और चिंता का विषय है;

(viii) अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए प्रार्थना पर विचार करते समय दो बातों के बीच संतुलन बनाया जाना चाहिए अर्थात् स्वतंत्र, ऋजु और पूर्ण अन्वेषण पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ना चाहिए तथा अभियुक्त को तंग करने, अपमानित करने और अन्यायोचित निरोध पर रोक होनी चाहिए;

(ix) न्यायालय साक्षी को बहकाने की युक्तियुक्त आशंका या शिकायतकर्ता को धमकी देने की आशंका पर विचार करे;

(x) अभियोजन में तुच्छ बातों के होने के संबंध में सदैव विचार किया जाना चाहिए और केवल असलियत ही वह तत्व है जिस पर जमानत अनुदत्त करने के मामले में विचार किया जाएगा और घटनाओं के सामान्य अनुक्रम में अभियोजन की असलियत के बारे में कुछ संदेह होने की स्थिति में अभियुक्त जमानत के आदेश का हकदार है ।'

123. गिरफ्तारी अंतिम विकल्प होना चाहिए और यह केवल उन आपवादिक मामलों तक निर्बंधित होनी चाहिए जहां उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियुक्त को गिरफ्तार करना अत्यावश्यक है;

124. न्यायालय को अवश्य ही सावधानीपूर्वक संपूर्ण उपलब्ध अभिलेख की परीक्षा करनी चाहिए और विशिष्ट रूप से उन अभिकथनों की जो अभियुक्त पर प्रत्यक्ष रूप से लगाए गए समझे जा सकने वाले हैं तथा इन अभिकथनों की अभिलेख पर की अन्य सामग्री और परिस्थितियों से संपुष्टि होती हो;

125. ये कुछ ऐसी बातें हैं, जिन पर अग्रिम जमानत के आवेदनों का विनिश्चय करते समय विचार किया जाना चाहिए । ये बातें किसी भी तरह से नि:शेष नहीं हैं अपितु वे केवल दृष्टांत-स्वरूप हैं क्योंकि उन सभी स्थितियों और परिस्थितियों की कल्पना करना कठिन है, जिनमें कोई व्यक्ति अग्रिम जमानत के लिए प्रार्थना कर सकता है । यदि संबंधित न्यायाधीश द्वारा अभिलेख पर की संपूर्ण सामग्री पर विचार करने के पश्चात् बुद्धिमत्ता से विवेकाधिकार का प्रयोग किया जाता है तब जमानत अनुदत्त करने या इनकार करने के पक्ष में अधिकांश शिकायतों को ध्यान में रखा जाएगा । विधान-मंडल ने अपनी प्रज्ञा से इस अधिकारिता का प्रयोग करने की शक्ति केवल वरिष्ठ न्यायालयों के न्यायाधीशों को सौंपी है । विधायी आशय के अनुरूप हमें इस तथ्य को स्वीकार करना चाहिए कि विवेकाधिकार का प्रयोग उचित रूप से किया जाएगा । किसी भी स्थिति में, सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय के विरुद्ध वरिष्ठ न्यायालय में समावेदन करने का विकल्प सदैव उपलब्ध है ।"

12. तर्काधार के इन प्रकटत: बेमेल तत्वों ने, जो पूर्व-निर्णयों की दो भिन्न पंक्ति से निकाले गए हैं, धारा 438 के अधीन अधिकारिता की व्याप्ति के बारे में दो भिन्न दृष्टिकोण पैदा होने के कारण इस बृहत्तर न्यायपीठ को निर्देश करने के लिए प्रेरित किया है ।

13. संपूर्णता के लिए, सुसंगत उपबंधों अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसे इसमें आगे कई जगह "दंड प्रक्रिया संहिता" और "संहिता" कहा गया है) की धारा 437, 438 और 439 को उपवर्णित करना आवश्यक है । वे नीचे उद्धृत की जाती हैं :–

"437. **अजमानतीय अपराध की दशा में कब जमानत ली जा सकेगी** – (1) जब कोई व्यक्ति, जिस पर अजमानतीय अपराध का अभियोग है या जिस पर यह संदेह है कि उसने अजमानतीय अपराध किया है, पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार या निरुद्ध किया जाता है या उच्च न्यायालय अथवा सेशन न्यायालय से भिन्न न्यायालय के समक्ष हाजिर होता है या लाया जाता है तब वह जमानत पर छोड़ा जा सकता है, किंतु –

(i) यदि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार प्रतीत होते हैं कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है तो वह इस प्रकार नहीं छोड़ा जाएगा ;

(ii) यदि ऐसा अपराध संज्ञेय अपराध है और ऐसा व्यक्ति मृत्यु, आजीवन कारावास या सात वर्ष या उससे अधिक के कारावास से दंडनीय किसी अपराध के लिए पहले दोषसिद्ध किया गया है, या वह तीन वर्ष या उससे अधिक के, किंतु सात वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास से दंडनीय किसी संज्ञेय अपराध के लिए दो या अधिक अवसरों पर पहले दोषसिद्ध किया गया है तो वह इस प्रकार नहीं छोड़ा जाएगा :

परंतु न्यायालय यह निदेश दे सकेगा कि खंड (i) या खंड (ii) में निर्दिष्ट व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जाए यदि ऐसा व्यक्ति, सोलह वर्ष से कम आयु का है या कोई स्त्री या कोई रोगी या शिथिलांग व्यक्ति है :

परंतु यह और कि न्यायालय यह भी निदेश दे सकेगा कि खंड (ii) में निर्दिष्ट व्यक्ति जमानत पर छोड़ दिया जाए, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि किसी अन्य विशेष कारण से ऐसा करना न्यायोचित तथा ठीक है :

परंतु यह और भी कि केवल यह बात कि अभियुक्त की आवश्यकता, अन्वेषण में साक्षियों द्वारा पहचाने जाने के लिए हो सकती है, जमानत मंजूर करने से इनकार करने के लिए पर्याप्त आधार नहीं होगी, यदि वह अन्यथा जमानत पर छोड़ दिए जाने के लिए हकदार है और वह वचन देता है कि वे ऐसे निदेशों का, जो न्यायालय द्वारा दिए जाएं, अनुपालन करेगा :

परंतु यह भी कि किसी भी व्यक्ति को, यदि उस द्वारा किया गया अभिकथित अपराध मृत्यु, आजीवन कारावास या सात वर्ष अथवा उससे अधिक के कारावास से दंडनीय है तो लोक अभियोजक को सुनवाई का कोई अवसर दिए बिना इस उपधारा के अधीन न्यायालय द्वारा जमानत पर नहीं छोड़ा जाएगा ।

(2) यदि ऐसे अधिकारी या न्यायालय को, यथास्थिति, अन्वेषण, जांच या विचारण के किसी प्रक्रम में यह प्रतीत होता है कि यह विश्वास करने के लिए उचित आधार नहीं है कि अभियुक्त ने अजमानतीय अपराध किया है किंतु उसके दोषी होने के बारे में और जांच करने के लिए पर्याप्त आधार है [तो अभियुक्त धारा 446क के उपबंधों के अधीन रहते हुए और ऐसी जांच लंबत रहने तक] जमानत पर, या ऐसे अधिकारी या न्यायालय के स्वविवेकानुसार, इसमें इसके पश्चात् उपबंधित प्रकार से अपने हाजिर होने के लिए प्रतिभुओं रहित बंधपत्र निष्पादित करने पर छोड़ दिया जाएगा ।

(3) जब कोई व्यक्ति, जिस पर ऐसे कारावास से जिसकी अवधि सात वर्ष तक की या उससे अधिक की है, दंडनीय कोई अपराध या भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) के अध्याय 6, अध्याय 16 या अध्याय 17 के अधीन कोई अपराध करने या ऐसे किसी अपराध का दुष्प्रेरण या षड्यंत्र या प्रयत्न करने का अभियोग या संदेह है – उपधारा (1) के अधीन जमानत पर छोड़ा जाता है तो न्यायालय यह शर्त अधिरोपित करेगा –

(क) कि ऐसा व्यक्ति इस अध्याय के अधीन निष्पादित बंधपत्र की शर्तों के अनुसार हाजिर होगा ;

(ख) कि ऐसा व्यक्ति उस अपराध जैसा, जिसको करने का उस पर अभियोग या संदेह है, कोई अपराध नहीं करेगा ; और

(ग) कि ऐसा व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा या साक्ष्य को नहीं बिगाड़ेगा,

और न्याय के हित में ऐसी अन्य शर्तें, जिसे वह ठीक समझे, भी अधिरोपित कर सकेगा ।

(4) उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर किसी व्यक्ति को छोड़ने वाला अधिकारी या न्यायालय ऐसा करने के अपने [कारणों या विशेष कारणों] को लेखबद्ध करेगा ।

(5) यदि कोई न्यायालय, जिसने किसी व्यक्ति को उपधारा (1) या उपधारा (2) के अधीन जमानत पर छोड़ा है, ऐसा करना आवश्यक समझता है तो ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार करने का निदेश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है ।

(6) यदि मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय किसी मामले में ऐसे व्यक्ति का विचारण, जो किसी अजमानतीय अपराध का अभियुक्त है, उस मामले में साक्ष्य देने के लिए नियत प्रथम तारीख के साठ दिन की अवधि के अंदर पूरा नहीं हो जाता है तो, यदि ऐसा व्यक्ति उक्त संपूर्ण अवधि के दौरान अभिरक्षा में रहा है तो, जब तक ऐसे कारणों से जो लेखबद्ध किए जाएंगे मजिस्ट्रेट अन्यथा निदेश न दे वह मजिस्ट्रेट की समाधानप्रद जमानत पर छोड़ दिया जाएगा ।

(7) यदि अजमानतीय अपराध के अभियुक्त व्यक्ति के विचारण के समाप्त हो जाने के पश्चात् और निर्णय दिए जाने के पूर्व किसी समय न्यायालय की यह राय है कि यह विश्वास करने के उचित आधार हैं कि अभियुक्त किसी ऐसे अपराध का दोषी नहीं है और अभियुक्त अभिरक्षा में है तो वह अभियुक्त को, निर्णय

सुनने के लिए अपने हाजिर होने के लिए प्रतिभुओं रहित बंधपत्र उसके द्वारा निष्पादित किए जाने पर छोड़ देगा ।

438. "**गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति की जमानत मंजूर करने के लिए निदेश** – (1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जा सकता है, तो वह इस धारा के अधीन निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है ; और यदि वह न्यायालय ठीक समझे तो वह निदेश दे सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसको जमानत पर छोड़ दिया जाए ।*

***वर्ष 2005 में किए गए संशोधन द्वारा उपधारा (1) निम्नलिखित रूप में प्रतिस्थापित की गई है (संशोधित भाग कोष्ठक में है; संशोधन को अभी तक प्रवृत्त नहीं किया गया है) :**

---

*["(1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि हो सकता है उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जाए, तो वह इस धारा के अधीन इस निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर छोड़ दिया जाए ; और वह न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात्, अर्थात् –

(i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त, जिसके अंतर्गत यह तथ्य भी है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध की बाबत किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध करने पर कारावास भुगता है;

(iii) आवेदक के न्याय से बचकर भागने की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या अपमानित करने के आक्षेप के साथ लगाया गया है, या तो आवेदन को तुरंत नामंजूर कर सकेगा या अग्रिम जमानत के लिए अंतरिम आदेश जारी कर सके :

परंतु जहां यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया है, वहां किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी आवेदक को वारंट के बिना गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा, यदि ऐसी गिरफ्तारी के लिए युक्तियुक्त आधार हैं ।

(1-क) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश अनुदत्त करता है, वहां न्यायालय तुरंत एक सूचना, जो सूचना सात दिनों से अन्यून की न हो, ऐसे आदेश की एक प्रति के साथ, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को तामील किए जाने के लिए, जोकि अभियोजक को उस समय सुने जाने का अवसर देने की दृष्टि से जब न्यायालय द्वारा आवेदन पर अंतिम रूप से सुनवाई की जाएगी, भिजवाएगा ।

(1-ख) अग्रिम जमानत की ईप्सा करने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई करने और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित करने के समय पर आबद्धकर होगी, यदि न्यायालय लोक अभियोजक द्वारा उसे किए गए आवेदन पर न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति को अवश्य समझता है ।"

असंशोधित भाग – धारा 438(2) और (3), और नई पुर:स्थापित उपधारा (4) निम्नलिखित प्रकार से है :–

(2) जब उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उपधारा (1) के अधीन निदेश देता है तब वह उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उन निदेशों में ऐसी शर्तें, जो वह ठीक समझे, सम्मिलित कर सकता है जिनके अंतर्गत निम्नलिखित भी हैं –

(i) यह शर्त कि वह व्यक्ति पुलिस अधिकारी द्वारा पूछे जाने वाले परिप्रश्नों का उत्तर देने के लिए जैसे और जब अपेक्षित हो, उपलब्ध होगा ;

(ii) यह शर्त कि वह व्यक्ति उस मामले के तथ्यों से अवगत किसी व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी के समक्ष ऐसे तथ्यों को प्रकट न करने के लिए मनाने के वास्ते प्रत्यक्षत: या अप्रत्यक्षत: उसे कोई उत्प्रेरणा, धमकी या वचन नहीं देगा ;

(iii) यह शर्त की वह व्यक्ति न्यायालय की पूर्व अनुज्ञा के बिना भारत नहीं छाड़ेगा ;

(iv) ऐसी अन्य शर्तें जो धारा 437 की उपधारा (3) के अधीन ऐसे अधिरोपित की जा सकती है मानो उस धारा के अधीन जमानत मंजूर की गई हो ।

(3) यदि तत्पश्चात् ऐसे व्यक्ति को ऐसे अभियोग पर पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह या तो गिरफ्तारी के समय या जब वह ऐसे अधिकारी की अभिरक्षा में है तब किसी समय जमानत देने के लिए तैयार है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान करने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चय करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा ।

(4) इस धारा की कोई बात ऐसे किसी मामले को लागू नहीं होगी, जिसमें किसी व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 की उपधारा (3) या धारा 376कख या धारा 376घक या धारा 376घख के अधीन अपराध कारित करने के अभियोग पर गिरफ्तार करना अंतर्वलित हो ।"

439. **जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की विशेष शक्तियां** – (1) उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय यह निदेश दे सकता है कि –

(क) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिस पर किसी अपराध का अभियोग है और जो अभिरक्षा में है, जमानत पर छोड़ दिया जाए और यदि अपराध धारा 437 की उपधारा (3) में विनिर्दिष्ट प्रकार का है, तो वह ऐसी कोई शर्त, जिसे वह उस उपधारा में वर्णित प्रयोजनों के लिए आवश्यक समझे, अधिरोपित कर सकता है ;

(ख) किसी व्यक्ति को जमानत पर छोड़ने के समय मजिस्ट्रेट द्वारा अधिरोपित कोई शर्त अपास्त या उपांतरित कर दी जाए :

परंतु उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय किसी ऐसे व्यक्ति की, जो ऐसे अपराध का अभियुक्त है जो अनन्यत: सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, या जो यद्यपि इस प्रकार विचारणीय नहीं है, आजीवन कारावास से दंडनीय है, जमानत लेने के पूर्व जमानत के लिए आवेदन की सूचना लोक अभियोजक को उस दशा के सिवाय देगा जब उसकी, ऐसे कारणों से, जो लेखबद्ध किए जाएंगे यह राय है कि ऐसी सूचना देना साध्य नहीं है :

परंतु यह और कि उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय उस व्यक्ति को, जो भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376 या धारा 376कख या धारा 376घक या धारा 376घख की उपधारा (3) के अधीन विचारणीय अपराध का अभियुक्त है, जमानत अनुदत्त करने से पूर्व ऐसे आवेदन की सूचना की प्राप्ति की तारीख से पंद्रह दिनों की अवधि के भीतर लोक अभियोजक को सूचना देगा ।

(1-क) भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 376 या धारा 376कख या धारा 376घक या धारा 376घख की उपधारा (3) के अधीन व्यक्ति के जमानत के आवेदन की सुनवाई के समय इत्तिलाकर्ता या उसके द्वारा प्राधिकृत अन्य व्यक्ति की उपस्थिति

आबद्धकर होगी ।

(2) उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय, किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसे इस अध्याय के अधीन जमानत पर छोड़ा जा चुका है गिरफ्तार करने का निदेश दे सकता है और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है ।"

पक्षकारों की दलीलें

14. याची की ओर से श्री अभय कुमार ने यह दलील दी कि सिब्बिया वाले मामले के पैरा 42 का अनुशीलन करके अग्रिम जमानत के आदेश की कालावधि पर इसकी अवधि को लेकर कोई परिसीमा होने का निष्कर्ष निकालना सही नहीं है; और यह कि किसी प्रस्तुत मामले में अग्रिम जमानत की कालावधि दांडिक मामले की कालावधि के समविस्तारी है, चाहे दांडिक मामला विचारण के प्रक्रम पर समाप्त हो जाता है या इससे पूर्व ही । उन्होंने यह भी दलील दी कि दैहिक स्वतंत्रता एक हृदयग्राही स्वतंत्रता है, यहां तक कि संविधान में प्रत्याभूत अन्य स्वतंत्रताओं की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है । अत: संविधान-निर्माताओं ने संविधान के अनुच्छेद 22 में विचारण के बिना किसी व्यक्ति को निरुद्ध रखने की राज्य की शक्ति को सीमित करने के लिए रक्षोपाय अधिनियमित किए, जो दैहिक स्वतंत्रता पर कठोर प्राधिकार को मानवीय बनाकर, अन्यथा अनुच्छेद 21 की कसौटी पर खरे उतर सकें ।

15. अत: यह दलील दी गई कि दैहिक स्वतंत्रता के सारभूत सांविधानिक अधिकार को केवल विधि द्वारा स्थापित अर्थात् उचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त प्रक्रिया के अनुसार इनकार या कम किया जा सकता है । इस सारभूत अधिकार को, अन्यों के अतिरिक्त, किसी दांडिक मामले में अभियुक्त को जमानत प्रदान करने के रूप में प्रक्रियात्मक रूप से प्रवर्तित किया जाता है । संहिता के अध्याय 33 में जमानत प्रदान करने के संबंध में विस्तार से उपबंध अंतर्विष्ट है । जमानत उस व्यक्ति को प्रदान की जाती है जो किसी अजमानतीय अपराध में गिरफ्तार किया जाता है या विचारण के पश्चात् किसी अपराध के लिए दोषसिद्ध किया गया है । जमानत प्रदान करने का आशय अभियुक्त को कैद से छोड़ देना है यद्यपि प्रतिभुओं के माध्यम

से अभी भी न्यायालय का उस पर रचनात्मक नियंत्रण बना रहेगा । यदि अभियुक्त को उसके स्वयं के बंधपत्र पर छोड़ा जाता है, तो अभी भी उससे प्राप्त किए गए बंधपत्र की शर्तों के माध्यम से ऐसे रचनात्मक नियंत्रण का प्रयोग किया जा सकता है । "जमानत" से शाब्दिक रूप से प्रतिभू अभिप्रेत है ।

16. "जमानत" शब्द का शाब्दिक अर्थ प्रतिभू है । काउंसेल ने हॉल्सबरीज़ लॉ ऑफ इग्लैंड[1] (हॉल्सबरी की इंग्लैंड की विधियां, चौथा संस्करण, वाल्यूम 11, पैरा 166) में "जमानत" के अर्थ के प्रति निर्देश किया और यह दलील दी कि इसका उद्देश्य अभियुक्त को उसके प्रतिभुओं की अभिरक्षा में रखना है जो उसके विचारण पर उपसंजात होने के लिए उसको पेश कराने के लिए आबद्ध हैं । जमानत प्रदान करने के उपरांत, अभियुक्त के लिए संहिता की अनुसूची 2 के प्ररूप सं. 45 में विहित रूप विधान के निबंधनों के अनुसार आवश्यक ब्यौरे देते हुए पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी या न्यायालय के समक्ष हाजिरी के लिए बंधपत्र और जमानत-बंधपत्र प्रस्तुत करना आज्ञापक है । इस बात पर बल दिया गया कि जमानत किसी भी प्रक्रम पर : विचारण-पूर्व, विचारण के दौरान और यहां तक कि विचारण पूर्ण होने के पश्चात् भी दी जा सकती है । काउंसेल ने यह दलील दी कि दंड प्रक्रिया संहिता के अध्याय 32 में उपबंधों (धारा 436-450) के अतिरिक्त, इस विवाद्यक के लिए सुसंगत अन्य उपबंध भी हैं अर्थात् धारा 360 (सदाचरण के आधार) परिवीक्षा पर या भर्त्सना के पश्चात् (छोड़ देने का आदेश, एक दोषसिद्धि-पश्च का प्रक्रम) और धारा 389 (अपील लंबित रहने तक दंडादेश का निलंबन और अपीलार्थी का जमानत पर छोड़ा जाना – दोषसिद्धि-पश्च और अपील के लंबित रहने के दौरान का प्रक्रम) है । धारा 438 स्वतंत्रता के सिद्धांत को स्पष्ट करती है ।

---

[1] हॉल्सबरीज़ लाज़ ऑफ इग्लैंड (चौथा संस्करण, वाल्यूम 11, पैरा 166) : "जमानत प्रदान करने का प्रभाव प्रत्यर्थी (अभियुक्त) को स्वतंत्र करना नहीं है अपितु उसे विधि की अभिरक्षा से छोड़ देना और उसे उसके प्रतिभुओं की अभिरक्षा में सौंप देना है जो एक विनिर्दिष्ट समय और स्थान पर उसके विचारण पर उसे पेश करने के लिए आबद्ध हैं । प्रतिभू किसी भी समय अपने मूलधन को अभिगृहीत कर सकते हैं और उसे विधि की अभिरक्षा में सौंप कर अपने को उन्मोचित कर सकते हैं ।"

17. काउंसेल ने इस बात पर बल दिया कि अग्रिम जमानत मिथ्या मामले में गिरफ्तारी की आशंका के लिए रामबाण है । अग्रिम जमानत निर्दोष व्यक्ति की गिरफ्तारी के सदमे और कलंक से संरक्षा करती है (जो अधिकांश मामलों में, विभिन्न उत्तरदायित्वों से भरपूर और यहां तक कि अपने परिवार के सदस्यों का एकमात्र आजीविका कमाने वाला/कमाने वाली है), परिणामस्वरूप उक्त अभियुक्त पर आश्रित के द्वारा प्रतिक्रम विपदग्रस्तों के सृजन को प्रतिषिद्ध करती है । दांडिक विधिशास्त्र का प्रारंभिक आधार-तत्व निर्दोषिता की उपधारणा है, जिसका अर्थ यह है कि कोई व्यक्ति जब तक दोषी नहीं पाया जाता है, निर्दोष होने का विश्वास किया जाता है । तथापि,, हमारी दांडिक विधि में ऐसे दृष्टांत हैं जहां कुछ विनिर्दिष्ट अपराधों के विषय में विपर्यस्त भार अभियुक्त पर डाला जाता है किंतु यह एक अन्य बात है और अन्य अपराधों के बारे में मूलभूत आधार-तत्व की साख कम नहीं हो जाती है । हमारे दांडिक विधिशास्त्र का अभी एक अन्य महत्वपूर्ण आयाम यह है कि जमानत प्रदान करना साधारण नियम है और किसी व्यक्ति को कारागार में या किसी कारावास में या किसी सुधार गृह (कोई जो भी नाम देना चाहे) में डालना एक अपवाद है । काउंसेल ने **दाताराम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया ।

18. काउंसेल ने यह दलील दी कि संहिता की धारा 439(2) के साथ पठित धारा 438 में के उपबंध में स्पष्ट मार्गदर्शक सिद्धांत और परिसीमाएं अंतर्विष्ट हैं । इस बात पर बल दिया गया कि शर्त अधिरोपित करने (या न करने) का विवेकाधिकार संबंधित न्यायालय पर छोड़ा गया है और इसलिए संहिता का निर्वचन इसकी अवधि को या तो आरोप पत्र फाइल होने या अन्वेषण के दौरान अभिकथित नई सामग्री का पता चलने तक कम करने के रूप में नहीं किया जा सकता है । यह दलील दी गई कि किसी उपयुक्त मामले में अग्रिम जमानत की अवधि को कम या संक्षिप्त करने की शक्ति संहिता की धारा 439(2) द्वारा उसी रीति में शासित होती है जो संहिता की धारा 437 (जो उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय से भिन्न न्यायालय पर लागू होती है) में

---

[1] (2018) 3 एस. सी. सी. 22.

प्रगणित है । काउंसेल ने यह तर्क दिया कि न्यायालयों द्वारा ऐसे आदेश पारित करने के दृष्टांत हैं, जिनमें इस न्यायालय के कुछ आदेश/निर्णय भी हैं, जिनमें अग्रिम जमानत से इनकार किया गया और अभियुक्त को निदेश दिया गया कि वह अभ्यर्पण करे और नियमित जमानत की ईप्सा करे । काउंसेल ने इस बात पर बल दिया कि यह बात किसी दृढ़ तर्काधार पर आधारित नहीं है ।

19. विद्वान् काउंसेल श्री सी. एस. एन. मोहन राव ने इस बात पर बल दिया कि अभियुक्त की गिरफ्तारी संहिता की धारा 41-46 द्वारा शासित होती है । अभियुक्त की गिरफ्तारी, यदि की जाती है, तो यह मौटे तौर पर अन्वेषण के दौरान मामले की सत्यता का पता लगाने के लिए (अन्वेषक अभिकरण का एक विकल्प) और स्वतंत्र तथा ऋजु विचारण के लिए, विचारण के दौरान अभियुक्त की उपस्थिति को सुनिश्चित करने के लिए, जिसमें साक्षियों को प्रभावित करने और साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने या फरार होकर और किसी अन्य ज्ञात या अज्ञात साधनों या ढंग द्वारा विचारण को विफल करने (विचारण न्यायालय का परमाधिकार) की किसी संभाव्यता का अपवर्जन भी सम्मिलित है, आवश्यक होती है । अत: क्या किसी अभियुक्त को गिरफ्तार किया जाए और अभिरक्षा में रखा जाए और वह उस शारीरिक परिरोध की दशा में रहे, आदर्शत: यह अभियोजन अभिकरण और/या विचारण करने वाले न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र होना चाहिए । दोनों द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अर्थात् अभियोजन अभिकरण, जिसमें शिकायतकर्ता/विपदग्रस्त भी है और संबंधित न्यायालय के लिए भी संहिता में पर्याप्त ढंग सूचीबद्ध हैं – अभियोजन अभिकरण द्वारा जमानत के रद्दकरण के लिए आवेदन फाइल करना और संबंधित न्यायालय द्वारा जमानतीय और अजमानतीय वारंट जारी करना । काउंसेल ने यह तर्क दिया कि किसी भी दशा में, अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को प्रथम बार में नामंजूर कर देने से अभियुक्त के लिए अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के अनिष्टकर परिणाम स्वयमेव उत्पन्न नहीं हो जाते हैं । बाद में अग्रिम जमानत के लिए आवेदन फाइल करना और सक्षम न्यायालय द्वारा एक उपयुक्त मामले में अभियुक्त के पक्ष में की परिस्थितियों में, उचित और प्रेरणादायक पश्चात्वर्ती अवसर को दर्शित करने के उपरांत,

राहत प्रदान करना इस प्रतिपादना का पर्याप्त परिचायक है कि किसी अग्रिम जमानत के आवेदन को नामंजूर कर देने से अभियुक्त के लिए स्वयमेव कोई वारंट उत्पन्न नहीं हो जाएगा कि वह अभ्यर्पण करे और नियमित जमानत की ईप्सा करे । यदि पश्चात्वर्ती और तात्विक परिवर्तन या परिस्थिति जमानत के रद्दकरण का युक्तियुक्त कारण बन सकते हैं, तो अभियुक्त के मूल्यवान अधिकार पर विचार करते हुए, समान रूप से किसी उपयुक्त मामले में निश्चित रूप से अग्रिम जमानत के लिए नए सिरे से आवेदन करने का कारण हो सकता है । इन सभी बातों को ध्यान में रखते हुए, काउंसेल ने यह तर्क दिया कि यह न्यायालय महत्रे वाले मामले में के तर्काधार का समर्थन करे, जो उसके अनुसार यह सिब्बिया वाले मामले में बृहत्तर न्यायपीठ के निर्णय के अनुरूप है और संहिता में नम्यताओं को समायोजित करता है ।

20. श्री राव ने **गुरचरण सिंह** बनाम **राज्य (दिल्ली प्रशासन)**[1] वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियों का यह कहने के लिए अवलंब लिया कि अग्रिम जमानत के आदेश को सीमित करने के बजाय वहां अग्रिम जमानत को रद्द करना इसका उत्तर है, जहां तथ्यों द्वारा इसका समर्थन होता हो और जहां तथ्यात्मक स्थिति आवेदक (जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आदेश का फायदाग्राही है) से ऐसी अपेक्षा करती हो ये मताभिव्यक्तियां निम्न प्रकार से हैं :–

> "नई संहिता की धारा 439(2) के अधीन उच्च न्यायालय अध्याय 33 के अधीन सेशन न्यायालय सहित किसी भी न्यायालय द्वारा जमानत पर छोड़े गए किसी व्यक्ति को उस दशा में अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर सकता है जबकि वह ऐसा करना समुचित समझे । तथापि,, यह स्पष्ट किया जाना है कि कोई सेशन न्यायालय उस जमानत को जो कि पहले ही उच्च न्यायालय द्वारा ली जा चुकी है तब तक रद्द नहीं कर सकता है जब तक उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त के जमानत पर छोड़ दिए जाने के पश्चात् विचारण के दौरान नई परिस्थितियां उत्पन्न न हो जाएं । तथापि,, यदि किसी सेशन न्यायालय ने किसी अभियुक्त को

---

[1] [1978] 4 उम. नि. प. 966 = (1978) 1 एस. सी. सी. 118.

जमानत पर छोड़ दिया है तो राज्य के पास दो विकल्प होते हैं । यदि ऐसी नई परिस्थितियां उत्पन्न हो गई हैं जो कि इससे पूर्व राज्य को ज्ञात नहीं थीं और अनिवार्य रूप से उस न्यायालय को ज्ञात नहीं थीं तो वह सेशन न्यायाधीश के समक्ष समावेदन कर सकता है, राज्य उच्च न्यायालय में भी समावेदन कर सकता है । जो कि धारा 439(2) के अधीन किसी अभियुक्त को अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने वाला वरिष्ठ न्यायालय होता है । तथापि, यदि राज्य सेशन न्यायाधीश के जमानत मंजूर करने वाले आदेश से व्यथित हो और उन परिस्थितियों के अलावा जो कि पहले ही विद्यमान थीं कोई नई परिस्थितियां उत्पन्न न हुई हों तो राज्य के लिए सेशन न्यायाधीश के समक्ष पुन: समावेदन करना निरर्थक होता और वह जमानत के रद्द किए जाने के लिए उच्च न्यायालय में समावेदन करने के लिए सक्षम होता । यह स्थिति उच्च न्यायालय की तुलना में सेशन न्यायालय की अधीनस्थ स्थिति के कारण उत्पन्न होती है ।"

उन्होंने **गुरचरण सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में की मताभिव्यक्तियों का यह कहने के लिए भी उल्लेख किया कि कानूनी जमानत [अर्थात् जहां किसी मामले में 60 या 90 दिनों की विहित अवधि के भीतर आरोप पत्र फाइल नहीं किया जाता है, और जिसके कारण संहिता की धारा 167(2) के प्रवर्तन द्वारा अभियुक्त को छोड़ दिया जाता है] संहिता के अध्याय 33 के अधीन समझी गई जमानत की कोटि में आती है :–

"धारा 167(2) के प्रथम परंतुक के अधीन कोई भी मजिस्ट्रेट इस धारा के अधीन अभियुक्त का निरोध साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा और उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त जमानत देने के लिए तैयार है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा, इस परंतुक के अधीन इस प्रकार छोड़ा जाना जमानत से संबंधित अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन छोड़ा गया समझा जाएगा ।"

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 167(2) निम्नलिखित प्रकार से है :–

"(2) वह मजिस्ट्रेट, जिसके पास अभियुक्त इस धारा के

अधीन भेजा जाता है, चाहे उस मामले के विचारण की उसे अधिकारिता हो या न हो, अभियुक्त का ऐसी अभिरक्षा में, जैसी वह मजिस्ट्रेट ठीक समझे इतनी अवधि के लिए, जो कुल मिलाकर पंद्रह दिन से अधिक न होगी, निरुद्ध किया जाना समय-समय पर प्राधिकृत कर सकता है तथा यदि उसे मामले के विचारण की या विचारण के लिए सुपुर्द करने की अधिकारिता नहीं है और अधिक निरुद्ध रखना उसके विचार में अनावश्यक है तो वह अभियुक्त को ऐसे मजिस्ट्रेट के पास, जिसे ऐसी अधिकारिता है, भिजवाने के लिए आदेश दे सकता है :

परंतु –

(क) मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का पुलिस अभिरक्षा से अन्यथा निरोध पंद्रह दिन की अवधि से आगे के लिए उस दशा में प्राधिकृत कर सकता है जिसमें उसका समाधान हो जाता है कि ऐसा करने के लिए पर्याप्त आधार है, किंतु कोई भी मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्ति का इस पैरा के अधीन अभिरक्षा में निरोध, –

(i) कुल मिलाकर नब्बे दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण ऐसे अपराध के संबंध में है जो मृत्यु, आजीवन कारावास या दस वर्ष से अन्यून की अवधि के लिए कारावास से दंडनीय है;

(ii) कुल मिलाकर साठ दिन से अधिक की अवधि के लिए प्राधिकृत नहीं करेगा जहां अन्वेषण किसी अन्य अपराध के संबंध में है,

और, यथास्थिति, नब्बे दिन या साठ दिन की उक्त अवधि की समाप्ति पर यदि अभियुक्त व्यक्ति जमानत देने के लिए तैयार है और दे देता है तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा और यह समझा जाएगा कि इस उपधारा के अधीन जमानत पर छोड़ा गया प्रत्येक व्यक्ति अध्याय 33 के प्रयोजनों के लिए उस अध्याय के उपबंधों के अधीन छोड़ा गया है; "

21. यह दलील दी गई कि **असलम बाबालाल देसाई** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में का विनिश्चय इस प्रतिपादना के लिए एक नज़ीर है कि धारा 167(2) के अधीन प्रदान की गई जमानत या प्रदान की गई समझी गई जमानत को केवल बाद में आरोप पत्र के फाइल कर देने पर रद्द नहीं किया जा सकता है । इस न्यायालय ने इस संदर्भ में **असलम बाबालाल** (उपर्युक्त) वाले मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :-

> "इस प्रकार यह दृष्टव्य है कि जब एक बार अभियुक्त को धारा 167(2) के परंतुक के हस्तक्षेप द्वारा जमानत पर छोड़ा गया है, तो मात्र यह तथ्य कि उसके छोड़े जाने के पश्चात् चालान फाइल किया गया है, उसकी जमानत को रद्द करने के लिए पर्याप्त नहीं है । ऐसी स्थिति में, उसकी जमानत केवल तब रद्द की जा सकती है यदि धारा 437(5) या इस विषय के लिए धारा 439(2) के अधीन जमानत के रद्दकरण से संगत बातें विद्यमान हैं । इसीलिए धारा 167(2) के अधीन किसी व्यक्ति को छोड़ा जाना उसको संहिता के अध्याय 33 के अधीन छोड़े जाने के समान माना गया है ।"

यह दलील दी गई कि इसलिए मात्र आरोप पत्र फाइल किया जाना स्वयमेव एक ऐसी घटना नहीं हो सकती है जो अभियुक्त को, जिसे अग्रिम जमानत का फायदा प्राप्त है, अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए बाध्य करती हो । जमानत के रद्दकरण के लिए अलग से आधार बनाए जाने चाहिएं ।

22. विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री के. वी. विश्वनाथन ने इस बात पर जोर दिया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग धारा 437 और 439 के अधीन शक्ति के प्रयोग के तदरूप है । परिणामस्वरूप, गिरफ्तारी की प्रत्याशा में धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत, उनकी दलील के अनुसार, किसी अन्य जमानत के आदेश की तरह अर्थात् दोषसिद्धि का आदेश किए जाने तक या धारा 439(2) के अधीन व्यक्तियों की गिरफ्तारी के लिए सकारात्मक

---

[1] (1992) 4 एस. सी. सी. 272.

आदेश पारित किए जाने तक प्रवृत्त रहती है । श्री विश्वनाथन ने इस बात पर बल दिया कि धारा 438 का अनुच्छेद 21 के साथ अन्तर्भूत संबंध है क्योंकि इसमें राज्य की शक्ति और अपराध का अन्वेषण करने के उत्तरदायित्व का व्यक्ति के अधिकारों और नागरिकों की स्वतंत्रताओं की संरक्षा करने के उसके कर्तव्य के साथ संतुलन बनाने की ईप्सा की गई है । यह दलील दी गई कि अनुच्छेद 21 अन्य अभियुक्त के पक्ष में निर्दोषिता की उपधारणा करती है; परिणामस्वरूप, यह बात शास्तिक कानूनों और उनके निर्वचन की प्रत्येक विचारणा का केंद्र बिंदु होना चाहिए ।

23. यह भी दलील दी गई कि धारा 438 विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया का भाग होने के कारण इसका उचित, न्यायसंगत और युक्तियुक्त रीति में अर्थान्वयन किया जाना चाहिए । विद्वान् काउंसेल ने यह दोहराया कि सिब्बिया वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इसी बात पर बल दिया गया था । श्री विश्वनाथन ने विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट की मताभिव्यक्तियों के संदर्भ में धारा 438 की पृष्ठभूमि की रूपरेखा देने के पश्चात् यह दलील दी कि उन टिप्पणियों पर दांडिक न्याय व्यवस्था में सुधारों पर समिति की रिपोर्ट में डा. न्यायमूर्ति वी. एस. मालिमथ द्वारा की गई मताभिव्यक्तियों को ध्यान में रखते हुए भी विचार किया जाना चाहिए । पैरा 7.26.3 का अवलंब लिया गया, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "रिपोर्ट में कहा गया है – राष्ट्रीय पुलिस आयोग की तीसरी रिपोर्ट पर विचार करने के पश्चात् कि 'गिरफ्तार करने की शक्ति पुलिस में भ्रष्टाचार के स्रोतों में से एक मुख्य स्रोत है । रिपोर्ट में सुझाव दिया गया है कि कुल मिलाकर 60 प्रतिशत गिरफ्तारियां या तो अनावश्यक थीं या अन्यायोचित और यह कि ऐसी अन्यायोचित पुलिस कार्रवाई पर कारागार विभाग का 43.2 प्रतिशत खर्च हुआ ।"

24. यह दलील दी गई कि पुलिस की गिरफ्तार करने की शक्ति दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 41 के अधीन है । यह उपबंध दो भागों में है । एक, उन अपराधों के संबंध में है, जिनमें अधिकतम दंड सात वर्ष के कारावास तक का हो सकता है । दूसरा, उन अपराधों के संबंध में है,

जिनमें अधिकतम दंड सात वर्ष से अधिक या मृत्युदंड तक हो सकता है । यद्यपि उनकी अलग-अलग शर्तें और अवसीमाएं हैं, तो भी इस धारा के पठन मात्र से यह स्पष्ट है कि प्रत्येक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 154 के अधीन रजिस्ट्रीकृत की जाती है, गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है । यह शक्ति इस धारा में अधिकथित शर्तों द्वारा परिसीमित की गई है । इसके अतिरिक्त, इस सिद्धांत को, कि गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले में किया जाना आवश्यक नहीं है, **जोगिन्द्र कुमार** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1]; **ललिता कुमारी** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[2] और **अरनेश कुमार** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[3] वाले मामलों में मान्यता दी गई है । **एम. सी. अब्राहम** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि पुलिस के लिए किसी व्यक्ति को केवल इस कारण गिरफ्तार करना आज्ञापक नहीं है कि उसकी अग्रिम जमानत नामंजूर कर दी गई थी । यह भी मत व्यक्त किया गया था कि गिरफ्तार करने की शक्ति को धारा 438 द्वारा भी परिसीमित किया गया है । जैसा कि विधि आयोग द्वारा मान्यता दी गई है, ऐसे मामले भी हैं, जहां गिरफ्तार करने की शक्ति प्रयोग किया जाना आवश्यक या अनुज्ञात नहीं है । ऐसे मामलों में गिरफ्तार करने की शक्ति का प्रयोग करना किसी व्यक्ति के अधिकार और स्वतंत्रता का घोर अतिक्रमण होगा । शक्ति का ऐसा प्रयोग करना धारा 41 के दुरुपयोग की कोटि में आएगा । गिरफ्तारी और अभिरक्षा की शक्ति पर धारा 437 या 439 द्वारा उपबंधित नियंत्रण सीमित है क्योंकि यह नियंत्रण केवल कार्योत्तर है । तब तक गिरफ्तार व्यक्ति पहले ही गिरफ्तारी का मानसिक आघात और अपमान सहन कर चुका होता है ।

25. काउंसेल ने यह दलील दी कि गिरफ्तारी की शक्ति और अभियुक्त के अधिकारों के बीच और अधिक संतुलन बनाने के लिए यह शक्ति विनिर्दिष्ट रूप से सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को दी

---

[1] (1994) 4 एस. सी. सी. 260.

[2] (2014) 2 एस. सी. सी. 1.

[3] (2014) 8 एस. सी. सी. 273.

[4] (2003) 2 एस. सी. सी. 649.

गई थी, जिससे यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह न्यायिक हस्तक्षेप पर्यवेक्षण स्तर पर किया जाए न कि मजिस्ट्रेट के स्तर पर । यह दलील दी गई कि इसी बात को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत निर्देश में उठाए गए दोनों प्रश्नों पर विचार किए जाने की आवश्यकता है । यह दलील दी गई कि अन्यथा भी इस धारा के पठन मात्र से यह दर्शित होता है कि धारा की परिभाषा में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे यह दर्शित होता हो कि धारा 438 के अधीन प्रदान की गई गिरफ्तारी-पूर्व जमानत समयाबद्ध होनी चाहिए । यह वही स्थिति है, जो धारा 437 और 439 में है । काउंसेल ने धारा 438(3) को इंगित किया और यह दलील दी कि इस उपबंध के दो अति महत्वपूर्ण पहलू हैं, जो संहिता की स्कीम को समझने के लिए विचार किए जाने हेतु सुसंगत हैं, अर्थात् (क) उस व्यक्ति को, जिसके पक्ष में गिरफ्तारी-पूर्व जमानत का आदेश किया गया है, पहले गिरफ्तार किया जाना चाहिए । ऐसे व्यक्ति को फिर गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के आदेश के आधार पर जमानत पर छोड़ा जाता है । ऐसे छोड़े जाने के लिए उस व्यक्ति द्वारा बंधपत्र या प्रतिभू देने की धारा 441 की अपेक्षा का पालन किया जाना चाहिए; (ख) जहां मजिस्ट्रेट का धारा 204 के अधीन संज्ञान लेते हुए यह मत है कि प्रथम बार में वारंट जारी किया जाना अपेक्षित है, तो वह मजिस्ट्रेट केवल जमानतीय वारंट जारी करने के लिए सशक्त है न कि अजमानतीय वारंट ।

26. मजिस्ट्रेट की शक्ति में की गई इस कमी से स्पष्ट रूप से विधान-मंडल का यह आशय दर्शित होता है कि जिस व्यक्ति को धारा 438 के अधीन जमानत प्रदान की गई है, उसे संज्ञान लेने के प्रक्रम पर उक्त गिरफ्तारी-पूर्व जमानत के आदेश के कारण गिरफ्तार नहीं किया जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि इस अभिव्यक्त उपबंध को ध्यान में रखते हुए, उक्त धारा का कोई अन्य निर्वचन किया जाना संभव नहीं है । इसमें निर्दिष्ट दूसरा प्रश्न पूरी तरह से इस उपधारा के अंतर्गत आता है । धारा 438 के अधीन पारित यह आदेश, जो कि एक गिरफ्तारी-पूर्व जमानत आदेश की प्रकृति का है, तथापि,, यह सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439 (2) के अधीन प्रदान की गई शक्ति के अध्यधीन है, जिसमें सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय को अभियुक्त को किसी भी समय

गिरफ्तार करने का निदेश देने की शक्ति दी गई है । इससे यह सुनिश्चित होता है कि न्यायिक हस्तक्षेप द्वारा दो प्रतिस्पर्धी सिद्धांतों के बीच संतुलन पर, यदि आवश्यकता उद्भूत होती है, पुन: विचार किया जा सकता है । अंतर केवल यह है कि इन मामलों में गिरफ्तारी की शक्ति का प्रयोग केवल न्यायिक संवीक्षा के पश्चात् किया जाता है । इस उपबंध में यह उपबंधित है कि संहिता यह पूर्व-कल्पना करती है कि धारा 438 और 439 के अधीन पारित आदेश अस्थायी समयाबद्ध नहीं है । इसलिए इन धाराओं के अधीन आदेशों के फायदे का उपभोग करने वाले व्यक्ति को केवल तभी अभिरक्षा में लिया जा सकता है, जब संहिता की धारा 439(2) के अधीन कोई विनिर्दिष्ट निदेश पारित किया जाता है । धारा 439(2) के अधीन गिरफ्तारी के लिए यह निदेश जमानत रद्द करने के आदेश से भिन्न है ।

27. यह दलील दी गई कि निस्संदेह धारा 438 के अधीन पारित किए गए आदेश में अधिरोपित किसी शर्त का अतिक्रमण होने पर धारा 439(2) के अधीन गिरफ्तार करने का निदेश दिया जा सकता है । तथापि,, धारा 439(2) की व्याप्ति केवल जमानत के रद्दकरण तक सीमित नहीं है । काउंसेल ने यह कहा कि **प्रदीप राम** बनाम **झारखंड राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा विधि की इस प्रतिपादना पर विचार किया गया था । इस मामले में, इस न्यायालय ने **मिठाभाई पाशाभाई पटेल** बनाम **गुजरात राज्य**[2] वाले मामले में पूर्ववर्ती निर्णय पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि किसी व्यक्ति को पूर्ववर्ती आदेश द्वारा जमानत पर छोड़े जाने के बावजूद धारा 437(5) और 439(2) के आधार पर अभिरक्षा में लेने का निदेश पारित किया जा सकता है । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 437(5) और 439(2) के अधीन किसी व्यक्ति को उसकी पूर्ववर्ती जमानत को आवश्यक रूप से रद्द किए बिना अभिरक्षा में लिए जाने का निदेश दिया जा सकता है । जमानत के रद्दकरण और धारा 439(2) के अधीन किसी व्यक्ति को अभिरक्षा में लेने का निदेश देने के बीच अंतर को मान्यता दी गई थी । इस मामले में यह भी अभिनिर्धारित किया गया था कि

---

[1] 2019 एस. सी. सी. ऑनलाइन (एस. सी.) 825.

[2] (2009) 6 एस. सी. सी. 332.

व्यक्ति को जमानत प्रदान किए जाने के पश्चात् यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या मामले में कोई अधिक गंभीर अपराध जोड़ा जाता है, तो इससे पूर्व कि मामले में जोड़े गए नए अपराधों के लिए ऐसे व्यक्ति को पुन: गिरफ्तार किया जा सके, धारा 439(2) या 437(5) के अधीन निदेश दिया जाना आवश्यक है । इसलिए इस न्यायालय ने जमानत प्रदान किए जाने के पश्चात् न्यायालय की पर्यवेक्षण की आवश्यकता को मान्यता दी ।

28. विद्वान् न्यायमित्र श्री हरिन रावल ने इस बात पर बल दिया कि जबकि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में ऐसे उद्धरण हैं जो याचियों के इन तर्कों का समर्थन करते हैं कि धारा 438 के अधीन किए गए आदेश अशर्त और समय द्वारा सीमित न किए गए हो सकते हैं, तो भी न्यायालय ने समान रूप से एक सावधानी-भरा टिप्पण भी लिखा और न्यायालयों से अग्रिम जमानत के आदेश करते समय सावधान रहने की इच्छा व्यक्त की । इस संबंध में, विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल ने **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय के पैरा 42 और 43 पर बल दिया ।

29. न्यायमित्र ने अपनी दलीलों को विस्तार देते हुए यह दलील दी कि क्या अग्रिम जमानत के आदेश में कोई शर्त अधिरोपित की जाए या एक समय-सीमा तक सीमित किया जाए, निस्संदेह यह आवेदन पर विचार करने वाले न्यायालय के विवेकाधिकार के अंतर्गत आता है । तथापि,, उन्होंने यह दलील दी कि इस विवेकाधिकार का प्रयोग सतर्कता और सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिए । काउंसेल ने यह दलील दी कि तीन स्थितियां हो सकती हैं जब अग्रिम जमानत के आवेदनों पर विचार किया जाना चाहिए : एक, जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने से पूर्व, गिरफ्तारी की प्रत्याशा में आवेदन फाइल किया जाता है; दो, प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् किंतु आरोप पत्र फाइल करने से पूर्व और तीन, आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात् । यह दलील दी गई कि **सलाउद्दीन, के. एल. वर्मा** और **अदरी धरन दास** (उपर्युक्त) वाले मामलों और उनके तर्काधार को अपनाने वाले विनिश्चयों में स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है कि प्रज्ञा की दृष्टि से और उचित कारणों से न्यायालयों के लिए अग्रिम जमानत के आदेशों की कालावधि पर समय-

सीमाएं अधिरोपित करना हितकर और लोकहित में होगा । काउंसेल ने यह दलील दी कि यदि प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने से पूर्व अग्रिम जमानत की ईप्सा की गई है, तो न्यायालयों को, उस समय तक के लिए सीमित राहत प्रदान करनी चाहिए जब प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल कर दी जाती है । दूसरी स्थिति में, अर्थात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल हो जाने के पश्चात्, न्यायालय अग्रिम जमानत प्रदान करना उस समय तक के लिए सीमित कर सकता है, जब आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है; तीसरी स्थिति में, यदि आवेदन आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात् किया जाता है, तो यह पूर्ण रूप से न्यायालय पर निर्भर है कि वह आरोप की प्रकृति को देखते हुए जमानत प्रदान करे या इससे इनकार करे । इसी तरह, यदि गिरफ्तारी की आशंका है, तो न्यायालय को मामले पर पूर्ण रूप से वैवेकिक रीति में विचार करना चाहिए और ऐसी शर्तें अधिरोपित करे जो उचित समझी जाएं ।

30. श्री रावल ने यह दलील दी कि प्रत्येक आकस्मिकता में, न्यायालय अग्रिम जमानत का आदेश प्रदान करने के पश्चात् शक्तिहीन नहीं है; उसके पास मामले पर पुन:विचार करने का विवेकाधिकार प्रतिधारित रहता है यदि विवाद्यक से सुसंगत नई सामग्री का पता चलता है और उसके समक्ष अभिलेख पर रखी जाती है । श्री रावल ने धारा 439(2) को रेखांकित किया और यह तर्क दिया कि इस उपबंध में न्यायालय की अपने पूर्व दृष्टिकोण को उपांतरित करने और यहां तक कि अग्रिम जमानत प्रदान करने के पूर्ववर्ती आदेश को पूर्ण रूप से प्रतिसंहृत करने की शक्ति को उदाहरण देकर समझाया गया है । यह दलील दी गई कि संहिता की धारा 362 के अधीन वर्जन (किसी दांडिक न्यायालय द्वारा आदेश का पुनर्विलोकन करने के विरुद्ध) धारा 439(2) के अधीन शक्ति की प्रकृति और अंतर्वस्तु को देखते हुए अग्रिम जमानत के मामलों में लागू नहीं होता है ।

31. श्री रावल ने यह भी दलील दी कि धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग किसी दांडिक अन्वेषण को क्षति पहुंचाने के लिए नहीं किया जा सकता है । उन्होंने इस चिंता को उजागर किया कि अग्रिम जमानत का अशर्त आदेश व्यापक रीति में उन्मुक्ति का दावा करने के लिए दुरुपयोग करने में समर्थ होगा, जो कि कदापि संसद् का आशय नहीं

था । काउंसेल ने यह दलील दी कि इसके अतिरिक्त, अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए सशक्त न्यायालयों के विवेकाधिकार को ऋजु और वस्तुनिष्ठ अन्वेषण करने में स्वतंत्रता के अधिकार और लोक हित को संतुलित करने के रूप में समझा जाना चाहिए । इसलिए ऐसे आदेश की रीति ऐसी होनी चाहिए, जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि अभियुक्त व्यक्ति अन्वेषणों के दौरान सहयोग कर सकें और संदिग्ध या अपराध में आलिप्त करने वाली ऐसी सामग्री की बरामदगी की प्रक्रिया में सहायता कर सकें, जो उनके बताने पर पुलिस को पता चला सके या बरामद हो सके और जो कि विचारण के दौरान साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अनुसार ग्राह्य है । उन्होंने यह दलील दी कि यदि इन चिंताओं को ध्यान में रखा जाता है, तो **महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में घोषित यह विधि-विशिष्ट रूप से पैरा 122 और 123 में, कि अग्रिम जमानत के लिए आवेदनों के संबंध में न्यायालय द्वारा कोई शर्त अधिरोपित नहीं की जा सकती है, गलत है और **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले के पैरा 42 और 43 में घोषित विधि के प्रतिकूल है । इस बात पर जोर दिया गया कि जब से **सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले में का विनिश्चय आया और अन्य पश्चात्वर्ती निर्णयों में, जिनमें इसका अनुसरण किया गया, साधारणतया न्यायालयों की परिपाटी अग्रिम जमानत प्रदान करते समय शर्तें अधिरोपित करने की रही; विशिष्ट रूप से ऐसी शर्तें जिनमें आवेदक/अभियुक्त से नब्बे दिनों के पश्चात् जमानत के लिए आवेदन करने, या जब एक बार आरोप पत्र फाइल कर दिया जाता है तो अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत के लिए आवेदन करने की अपेक्षा की जाती थी । काउंसेल ने धारा 437(3) का यह कहने के लिए अवलंब लिया कि इस उपबंध में वर्णित शर्तों पर धारा 438(2) के आधार पर अग्रिम जमानत प्रदान करते समय विचार किया जाना चाहिए ।

32. विद्वान् महासालिसिटर श्री तुषार मेहता और विद्वान् अपर महासालिसिटर श्री विक्रमजीत बनर्जी ने यह दलील दी कि **महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय गलत है और उलटा जाना चाहिए । यह दलील दी गई कि यद्यपि धारा 438 में स्वयमेव अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए शर्तों का अधिरोपित करना पूर्वकल्पित नहीं है, तो

भी धारा 438(2) और 437(3) को देखते हुए विभिन्न बातों को अवश्य ध्यान में रखा जाना चाहिए । अग्रिम जमानत प्रदान करने (या इनकार करने) की शक्ति का प्रयोग करते समय, न्यायालय व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार और पुलिस के अन्वेषण करने के अधिकार के बीच संतुलन बनाए रखने के लिए आबद्ध है । इस प्रयोजन के लिए, धारा 438(1) के अधीन राहत प्रदान करते समय अबाधित अन्वेषण सुनिश्चित करने के लिए धारा 438(2) के अधीन समुचित शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं । शर्तें अधिरोपित करने का उद्देश्य व्यक्ति या अभियुक्त द्वारा अन्वेषण में बाधा डालने की संभाव्यता से बचना है । इस प्रकार, ऐसी कोई शर्त, जिसका अन्वेषण या विचारण की ऋजुता या औचित्य से कोई संबंध नहीं है, विधि के अधीन अनुज्ञेय होने के रूप में समर्थन नहीं किया जा सकता है । परिणामस्वरूप, न्यायालयों को शर्तें अधिरोपित करते समय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग सावधानीपूर्वक और संयम से करना चाहिए ।

33. विधि किसी अभियुक्त को उसके दोष के साबित हो जाने तक निर्दोष होने की उपधारणा करती है । उपधारणात्मक रूप से निर्दोष व्यक्ति के रूप में, वह संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रत्याभूत दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार सहित सभी मूल अधिकारों के लिए हकदार है । काउंसेल ने यह कहा कि साथ ही साथ, अग्रिम जमानत प्रदान करते समय न्यायालयों से प्रत्याशा की जाती है कि अभियोग की प्रकृति और घोरता, आवेदक का पूर्ववृत्त अर्थात् ऐसे अपराध में उसकी पूर्व में अंतर्ग्रस्तता और अभियुक्त के न्याय से बचकर भागने की संभाव्यता के बारे में विचार करे और ध्यान में रखे । न्यायालय का यह भी कर्तव्य है कि यह सुनिश्चित करे कि क्या अभियोग आवेदक को गिरफ्तार करवाकर उसे क्षति पहुंचाने या अपमानित करने के उद्देश्य से तो नहीं लगाया गया है । यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है कि न्यायालय संहिता की धारा 438(2) के अधीन यथा उपबंधित समुचित शर्तें अधिरोपित करने के लिए आबद्ध हैं ।

34. काउंसेल ने यह तर्क दिया कि जमानत प्रदान करने या इनकार करने के लिए मामले का मूल्यांकन करने के संबंध में संहिता की धारा

438 और 439 के बीच कोई सारभूत अंतर नहीं है । तथापि,, न तो अग्रिम जमानत और न ही नियमित जमानत नियम के रूप में प्रदान नहीं की जा सकती है । असाधारण विशेषाधिकार होने के कारण केवल आपवादिक मामलों में प्रदान की जानी चाहिए । न्यायालय को प्रदत्त न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग यह विनिश्चय करने के लिए विवेक का उचित प्रयोग करने के पश्चात् उचित रूप से किया जाना चाहिए कि अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए यह एक उपयुक्त मामला है या नहीं । इस संबंध में, काउंसेल ने **जय प्रकाश सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले का अवलंब लिया । काउंसेल ने **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य** बनाम **रामकिशन बालोथिया और एक अन्य**[2] वाले मामले का भी अवलंब लिया, जिसमें इस न्यायालय ने अग्रिम जमानत के अधिकार की प्रकृति पर विचार किया और यह मत व्यक्त किया :–

> "हमारे लिए इस दलील को स्वीकार करना मुश्किल है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 अनुच्छेद 21 का अभिन्न भाग है । पहली बात तो यह कि पुरानी दंड प्रक्रिया संहिता में धारा 438 के समान कोई उपबंध नहीं था.....। इसके अतिरिक्त, अग्रिम जमानत अधिकार के रूप में प्रदान नहीं की जा सकती है । आवश्यक रूप से यह एक कानूनी अधिकार है जो संविधान के प्रवृत्त होने के काफी पश्चात् प्रदत्त किया गया था । इसे संविधान के अनुच्छेद 21 के एक आवश्यक संघटक के रूप में नहीं माना जा सकता है और कतिपय विशेष प्रवर्गों के अपराधों पर इसके अनुपयोजन को अनुच्छेद 21 का अतिक्रमण नहीं माना जा सकता है ।"

35. **सावित्री अग्रवाल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और एक अन्य**[3] तथा **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामलों में विनिश्चयों को यह तर्क देने के लिए निर्दिष्ट किया गया कि अग्रिम जमानत का आदेश प्रदान करने से पूर्व न्यायालय का यह समाधान होना चाहिए कि इसकी ईप्सा करने वाले आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे एक

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 379.

[2] (1995) 3 (सप्ली.) एस. सी. सी. 419.

[3] (2009) 8 एस. सी. सी. 325.

अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किए जाने की संभावना है और वह विश्वास युक्तियुक्त आधारों पर टिका होना चाहिए । मात्र "भय" विश्वास नहीं है; आवेदक के लिए यह दर्शित करना पर्याप्त नहीं है कि उसे किसी प्रकार की अस्पष्ट आशंका है कि कोई व्यक्ति उसे कोई अपराध कारित करने का अभियोग लगाने जा रहा है, जिसके अनुसरण में उसे गिरफ्तार किया जा सकता है । आवेदक के आधार, जिनके आधार पर वह विश्वास करता है कि उसे अजमानतीय अपराध के लिए गिरफ्तार किया जा सकता है, न्यायालय द्वारा वस्तुनिष्ठ रूप से परीक्षा करने योग्य होने चाहिएं । उसके विश्वास की युक्तियुक्तता पर विचार करने के लिए न्यायालय को समर्थ बनाने हेतु उन विनिर्दिष्ट घटनाओं और तथ्यों को प्रकट किया जाना चाहिए, जिनका विद्यमान होना इस धारा के अधीन प्रदत्त की गई शक्ति का प्रयोग करने के लिए अत्यावश्यक है । यह बताया गया कि धारा 438 के उपबंधों का अवलंब अभियुक्त की गिरफ्तारी के पश्चात् नहीं लिया जा सकता है । गिरफ्तारी के पश्चात् अभियुक्त यदि उस अपराध या उन अपराधों, जिसके/जिनके लिए उसे गिरफ्तार किया जाता है, की बाबत जमानत पर छूटना चाहता है, तो उसे अपने उपचार की ईप्सा अवश्य संहिता की धारा 437 या धारा 439 के अधीन करनी चाहिए । **सावित्री अग्रवाल** (उपर्युक्त) वाले मामले के निम्नलिखित उद्धरणों का अवलंब लिया गया :–

> "24. संविधान न्यायपीठ ने इस धारा की व्याप्ति पर अनावश्यक निर्बंधन अधिरोपित करने के विरुद्ध सचेत करते हुए निम्नलिखित दिशा-निर्देश अधिकथित किए जिन्हें न्यायालयों को अग्रिम जमानत प्रदान करने के आवेदन पर विचार करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए, क्योंकि उसकी राय में, अतिउत्साही होकर ऐसे प्रतिबंध और शर्तें लगा देने से, जो संहिता की धारा 438 में नहीं पायी जाती हैं, इस उपबंध को सांविधानिक रूप से दोषपूर्ण बना सकता है, चूंकि दैहिक स्वतंत्रता के अधिकार को, जो संविधान के अनुच्छेद 21 में प्रतिष्ठापित है, अयुक्तियुक्त निर्बंधनों के अनुपालन पर निर्भर नहीं किया जा सकता है :–
>
> .....

(iv) जमानत का कोई सर्वग्राही आदेश पारित नहीं किया जाना चाहिए और न्यायालय को, जो अग्रिम जमानत प्रदान करता है, उन अपराध या अपराधों को विनिर्दिष्ट करने में अवश्य सावधानी बरतनी चाहिए, केवल जिनके संबंध में आदेश प्रभावी होगा । संहिता की धारा 438(1) के अधीन राहत प्रदान करते समय, धारा 438(2) के अधीन समुचित शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं, जिससे कि अबाधित अन्वेषण सुनिश्चित किया जा सके । ऐसी एक शर्त यह भी हो सकती है कि पुलिस द्वारा यह मामला बनाने पर कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन किसी तथ्य का पता चलने की संभावना है, तो जमानत पर छोड़ा गया व्यक्ति बरामदगी को सुकर बनाने के लिए पुलिस अभिरक्षा में लिए जाने का दायी होगा । अन्यथा, ऐसा आदेश अराजकता का अधिकार-पत्र और अपराधों में शीघ्र अन्वेषण को दबाने का हथियार बन सकता है, जिसकी पूर्व-कल्पना करना तब संभव नहीं हो सकता था, जब आदेश पारित किया गया था ।

.....

(ix) यद्यपि यह आवश्यक नहीं है कि संहिता की धारा 438(1) के अधीन पारित किए गए आदेश का प्रवर्तन समय-सीमा में सीमित किया जाए, किंतु न्यायालय, यदि ऐसा करने के कारण हों, तो आदेश के प्रवर्तन को उस संक्षिप्त अवधि तक के लिए सीमित कर सकता है, जो आदेश के अंतर्गत आने वाले मामले के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल नहीं हो जाने तक हो सकती है । ऐसे मामलों में, आवेदक को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल हो जाने के पश्चात् युक्तियुक्त संक्षिप्त अवधि के भीतर संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन जमानत का आदेश अभिप्राप्त करने के लिए निदेशित किया जा सकता है ।"

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

36. राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र सरकार और संघ की ओर से यह भी तर्क दिया गया कि इस न्यायालय ने, बारम्बार, यह गंभीर चिंता

व्यक्त की है कि यदि अभियुक्तों या आवेदकों को जो अग्रिम जमानत की ईप्सा करते हैं, पुलिस द्वारा उनसे परिप्रश्न करने से पूर्व अशर्त आदेश से सज्जित कर दिया जाता है, तो इससे अन्वेषण को बहुत बड़ी अपहानि होगी और किसी षड्यंत्र में अंतर्वलित सभी शाखाओं का खुलासा करने की संभावनाओं को बाधा पहुंचेगी । परिणाम के तौर पर लोक हित को भी क्षति पहुंचेगी । इस संदर्भ में **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **बिमल कृष्ण कुंडु**[1] वाले मामले के प्रति निर्देश किया गया । इसी तरह, **मुरलीधरन** बनाम **केरल राज्य**[2] वाले मामले की ओर भी इस न्यायालय का ध्यान आकृष्ट किया गया, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि "अन्वेषक अभिकरण के लिए ऐसे अभियुक्त को अभिरक्षा में लेकर परिप्रश्न करना अपरिहार्य रूप से आवश्यक है जिससे ऐसे व्यक्ति द्वारा कारित आपराधिक षड्यंत्रों में अंतर्ग्रस्त सभी कड़ियों का खुलासा किया जा सके, जिनकी वजह से अंततोगत्वा अति दु:खद घटना घटी थी ।" इस बात पर बल दिया गया कि अभिरक्षा में लेकर परिप्रश्न करने के दौरान किए गए कथन गुणात्मक रूप से उनसे अधिक सुसंगत होते हैं जो अन्यथा किए जाते हैं । अत: अग्रिम जमानत का अशर्त आदेश प्रदान करने से संपूर्ण और वस्तुनिष्ठ अन्वेषण को धक्का पहुंचेगा ।

37. अपर महासालिसिटर श्री अमन लेखी ने यह तर्क दिया कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में के तर्काधार का साधारण तात्पर्य अग्रिम जमानत प्रदान करने में इसकी अवधि को सीमित करने के लिए (या तो समय के रूप में, या किसी विनिर्दिष्ट घटना के रूप में जैसे कि आरोप पत्र फाइल किया जाना) नियम के तौर पर शर्तें अधिरोपित करने के पक्ष में नहीं था । यह दलील दी गई कि धारा 439(2) का पाठ स्वयमेव सभी प्रकार के आदेशों पर लागू होता है – जिसमें आवेदक को न्यायालय का यह समाधान हो जाने पर जमानत पर छोड़ने (अर्थात् अग्रिम जमानत प्रदान करने) का आदेश या निदेश भी सम्मिलित है कि ऐसा करना आवश्यक है । वहां ऐसा आदेश [धारा 439(2) के अधीन रद्द करने या गिरफ्तारी का निदेश देने] किया जा सकता है जहां राहत प्रदान

---

[1] (1997) 8 एस. सी. सी. 104.

[2] (2001) 4 एस. सी. सी. 638.

करने के समय पर लागू की गई शर्तों का अतिक्रमण किया जाता है या अनुपालन नहीं किया जाता है, या जहां ऋजु विचारण के बृहत्तर हितों के लिए ऐसा करना आवश्यक हो ।

विश्लेषण और निष्कर्ष

मुद्दा सं. 1 : क्या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन किसी व्यक्ति को प्रदान की गई संरक्षा एक नियत अवधि तक सीमित होनी चाहिए, जिससे कि वह व्यक्ति विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण कर सके और नियमित जमानत की ईप्सा करने में समर्थ हो सके ?

38. जमानत की अवधारणा, अर्थात् नागरिकों की स्वतंत्रता को यहां तक कि अपराधों के करने वाले अभियुक्तों की भी स्वतंत्रता को, किंतु शर्तों के अध्यधीन, परिरक्षित करना प्राचीन काल से है । जस्टिनियन-I ने कलेक्शन्स ऑफ लाज़ एंड इंटरप्रिटेशन्स जो उनके समय में प्रचलित थी, बुक 9 शीर्षक 3(2) में कोडक्स जस्टिनियानस (या 'कोड जस') में यह अनुध्यात किया है कि "किसी अभियुक्त व्यक्ति को किन्हीं परिस्थितियों में भी उसके दोषसिद्ध होने से पूर्व कारागार में परिरुद्ध नहीं किया जाएगा" । अति प्राचीन काल के सन्नियम का दूसरा उदाहरण माग्ना कार्टा है, जिसके खंड 44 में यह अधिनियमित किया गया था कि "जो लोग जंगल के बाहर निवास करते हैं, उन्हें भविष्य में जंगल के राजसी न्यायाधीशों के समक्ष तब तक साधारण समनों का उत्तर देने के लिए उपसंजात होने की आवश्यकता नहीं है जब तक वे वास्तव में कार्यवाहियों में अंतर्वलित न हों या ऐसे किसी व्यक्ति के लिए प्रतिभू न हों जिसे जंगल के अपराध के लिए अभिगृहीत किया गया हो" । जमानत को स्पष्ट संसदीय मान्यता यूके में हेबियस कारप्स ऐक्ट, 1677 और इंग्लिश बिल ऑफ राइट्स, 1689 के द्वारा बाद की अधिनियमितियों के रूप में मिली, जिनमें यह विहित किया गया कि अत्यधिक जमानत नहीं दी जानी चाहिएं, न ही अत्यधिक जुर्माने अधिरोपित किए जाने चाहिएं, न ही क्रूर और अप्रायिक दंड दिए जाने चाहिएं" ।

39. जमानत को स्वत: संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है ।

यह अब एक सन्नियम के रूप में व्यापक रूप से मान्यताप्राप्त है जिसके अंतर्गत अभियुक्त व्यक्ति को ऐसे रक्षापायों के अध्यधीन स्वतंत्र करने के लिए समर्थ बनाने के शासी सिद्धांत भी हैं, जो यह निश्चित करने के लिए आवश्यक हैं कि वह, जब कभी उसकी आवश्यकता हो, उपस्थिति हो जाए । जमानत का न्यायोचित्य (कोई अपराध करने या करने वाले अभियुक्त को) यह है कि जमानत ऐसे व्यक्ति को निरोध की कठिनाइयों से परिरक्षित करती है जो विधि का उल्लंघन के लिए संदेह के घेरे में है किंतु उसके लिए दोषसिद्ध नहीं किया गया है ।

40. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में गिरफ्तारी की आशंका करने वाले व्यक्ति को जमानत प्रदान करने के लिए निदेश जारी करने हेतु उपबंध किया गया है । 1973 की दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की पुरानी संहिता के स्थान पर आई है । पुरानी संहिता में 1973 की संहिता की धारा 438 का कोई समवर्ती उपबंध उपबंधित नहीं था । पुरानी संहिता के अधीन, विभिन्न उच्च न्यायालयों के बीच इस प्रश्न के संबंध में मत-विभिन्नता थी कि क्या न्यायालयों को गिरफ्तारी की प्रत्याशा में जमानत का आदेश पारित करने की अंतर्निहित शक्ति है । प्रबल स्थिति यह थी कि न्यायालयों के पास ऐसी शक्ति नहीं है । बाद में, संहिता को और अधिक विस्तृत बनाने के लिए विभिन्न संशोधनों की आवश्यकता के परिणामस्वरूप 1973 में दंड प्रक्रिया संहिता का अधिनियमन किया गया । रोचक बात यह है कि धारा 438 में अभिव्यक्त रूप से "अग्रिम जमानत" पद का प्रयोग नहीं किया गया है; बजाय इसके इसकी भाषा में संबंधित न्यायालय को जमानत प्रदान करने के लिए निदेश जारी करने हेतु सशक्त किया गया है ।

41. भारत के विधि आयोग ने 1969 वाली अपनी 41वीं रिपोर्ट में यह उल्लेख किया था कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की आवश्यकता मुख्यत: इसलिए उद्भूत होती है, क्योंकि कभी-कभी प्रभावशाली व्यक्ति अपने प्रतिद्वंद्वियों को नीचा दिखाने के प्रयोजनार्थ और उन्हें कुछ दिनों तक जेल में निरुद्ध करके अन्य प्रयोजनों के लिए मिथ्या मामलों में फंसाने की कोशिश करते हैं । रिपोर्ट में यह भी उल्लेख किया गया है कि मिथ्या मामलों के अलावा, जहां कि यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि अपराध के अभियुक्त व्यक्ति का फरार होना संभाव्य नहीं है या अन्यथा

दुरुपयोग करना उस समय संभाव्य नहीं है, जबकि वह जमानत पर हो, वहां उससे यह अपेक्षा करने में कोई भी न्यायोचित्य प्रतीत नहीं होता है कि वह प्रथमत: अपने आपको अभिरक्षा के लिए सुपुर्द कर दे, कुछ दिनों तक जेल में रहे और तब जमानत के लिए आवेदन करे । रिपोर्ट में यह सिफारिश की गई कि ऐसे मामलों में जमानत अनुदत्त करने का निदेश देने के लिए एक उपबंध सम्मिलित किया जाए और यह कि यह शक्ति केवल उच्च न्यायालयों और सेशन न्यायालयों में निहित हो । तथापि,, रिपोर्ट में उपबंध के लिए सुझाई गई भाषा में अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए शर्तें शामिल नहीं थी । तथापि,, कतिपय शर्तें जो न्यायालय सम्मिलित कर सकते हैं, उस उपबंध में सम्मिलित की गई थीं जो दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 438 के रूप में अधिनियमित की गई थीं ।

42. "अग्रिम जमानत" पद स्वयं दंड प्रक्रिया संहिता में नहीं है अपितु भारत के विधि आयोग द्वारा अपनी 41वीं रिपोर्ट में प्रयुक्त किया गया था । यह पद यह संप्रेषित करने के लिए प्रयुक्त किया गया था कि यह गिरफ्तारी की प्रत्याशा में अर्थात् स्वयं गिरफ्तारी किए जाने से पूर्व जमानत के लिए आवेदन होता है । व्हारटन की लॉ लेक्सिकॉन के अनुसार, और जैसा कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में उल्लेख किया गया है, जमानत प्रदान करने से अभिप्रेत "किसी गिरफ्तार या कारावासित किए गए व्यक्ति को उसकी उपसंजाति के लिए ली गई प्रतिभूति के आधार पर स्वतंत्र कर देना है" । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था :–

> "जमानत के मामूली आदेश और अग्रिम जमानत के आदेश के बीच जो प्रभेद है, वह यह है कि जबकि पूर्वकथित गिरफ्तारी के बाद अनुदत्त किया जाता है और इसी कारण से उससे पुलिस की अभिरक्षा से निर्मुक्ति अभिप्रेत है, पश्चात्कथित गिरफ्तारी के पूर्वानुमान के आधार पर अनुदत्त किया जाता है और इसी कारण से गिरफ्तारी के समय से ही प्रभावशील हो जाता है । पुलिस अभिरक्षा अजमानतीय अपराधों के लिए गिरफ्तारी की आवश्यक सहवर्ती है । यदि ऐसा कहा जाए, तो अग्रिम जमानत का आदेश ऐसे अपराध या अपराधों के लिए, जिसके या जिनके संबंध में

आदेश जारी किया जाता है, की गई गिरफ्तारी के पश्चात् पुलिस अभिरक्षा के विरुद्ध बीमा का काम करता है । अन्य शब्दों में, गिरफ्तारी के बाद जमानत के आदेश से भिन्न, वह गिरफ्तारी के पहले की ऐसी विधिक प्रक्रिया है जो यह निदेश देती है कि यदि वह व्यक्ति जिसके पक्ष में आदेश जारी किया गया है, इसके पश्चात् ऐसे अभियोग के आधार पर गिरफ्तार किया जाता है, जिसके संबंध में निदेश दिया गया है, तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46(1) में जिसमें इस बात के संबंध में उपबंध किया गया है कि गिरफ्तारियां किस प्रकार से की जानी चाहिएं, यह उपबंध किया गया है कि गिरफ्तारी करने में 'पुलिस अधिकारी या अन्य व्यक्ति, जो गिरफ्तारी कर रहा है, गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति के शरीर को वस्तुत: छुएगा या परिरुद्ध करेगा, जब तक कि उसने वचन या कर्म द्वारा अपने आप को अभिरक्षा में सुपुर्द न कर दिया हो ।' धारा 438 के अधीन दिए गए निदेश का आशय इस प्रकार से छुए जाने या परिरुद्ध किए जाने से सशर्त उन्मुक्ति प्रदान करना है ।"

43. **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने इस विनिर्दिष्ट प्रश्न पर विचार किया था कि क्या धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति इन्हीं आकस्मिकताओं तक सीमित है जैसे कि पुलिस अपनी अन्वेषणकारी शक्तियों का प्रयोग गिरफ्तार किए जाने वाले व्यक्ति को अपमानित करने के लिए या न्याय की प्रक्रिया का दुरुपयोजन करने और अन्वेषण की अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करने के लिए कर सकती है । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में एक तर्क यह दिया गया था, वर्तमान मामले में भी दिया गया है, कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए, संबंधित न्यायालय के विवेकाधिकार पर छोड़ दी जानी चाहिए । दूसरी ओर, राज्य ने भी यह दलील दी कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की बात कम से कम इस शर्त के आधार पर होनी चाहिए कि आवेदक ने यह दर्शित कर दिया है कि अंतरस्थ हेतु के कारण उसका गिरफ्तार किया जाना संभाव्य है – यह कि प्रस्थापित आरोप निराधार हैं या असद्भाव से प्रेरित हैं । राज्य ने यह भी दलील दी

कि अग्रिम जमानत एक असाधारण अध्युपाय है और इसलिए जब कभी यह प्रतीत होता है कि प्रस्थापित अभियोग प्रथमदृष्ट्या तर्कसंगत हैं, तो आवेदक को गिरफ्तार किए जाने के पश्चात् उसे दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन जमानत के लिए आवेदन करने के मामूली अध्युपाय का लाभ उठाने के लिए छोड़ दिया जाना चाहिए ।

44. दूसरी ओर, **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में अपीलार्थियों की ओर से काउंसेल ने यह दलील दी कि चूंकि जमानत से इनकार करना दैहिक स्वाधीनता से वंचित करने की कोटि में आता है, इसलिए न्यायालयों को धारा 438 के विस्तार पर अनावश्यक निर्बंधन अधिरोपित करने के विरुद्ध अपना मत देना चाहिए, जबकि उस उपबंध के अधीन विधान-मंडल द्वारा कोई ऐसे निर्बंधन विहित नहीं किए गए हैं । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि धारा 438(1) में विस्तृत तथा अविशेषित शब्दों का प्रयोग किया गया है और न्यायालय की यह राय थी कि ऐसी विस्तृत भाषा में ऐसे निर्बंधन और ऐसी शर्तें नहीं डाल देने चाहिएं जिन्हें विधान-मंडल ने स्वयं ही अधिरोपित करना न तो उचित समझा था और न ही आवश्यक । न्यायालय ने दंड-न्यायशास्त्र में निर्दोषिता की उपधारणा की प्रमुखता पर जोर दिया और यह मत व्यक्त किया कि धारा 438 को अधिनियमित करके कोई नया कदम नहीं उठाया गया था, किंतु बल्कि यह विद्यमान उपबंधों, धारा 437 (जिसमें अजमानतीय मामलों में जमानत अनुदत्त करने संबंधी सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय से भिन्न अन्य न्यायालयों की शक्ति के बारे में उपबंध किया गया है) और धारा 439 (जिसमें जमानत के बारे में उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय की "विशेष शक्ति" के बारे में उपबंध किया गया है) के संदर्भ के भीतर है । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले के सुसंगत प्रोद्धरणों को ध्यान में रखते हुए, इस विवाद्यक पर अब सुसंगत मताभिव्यक्तियों का वर्णन करना श्रेयस्कर होगा । सिब्बिया के मामले में की गई चर्चा और निष्कर्षों का सारांश निम्नलिखित है ।

45. (i) अशर्त अग्रिम जमानत का आदेश अनुदत्त करना "स्पष्टतया धारा 438 के निबंधनों के ही प्रतिकूल होगा ।" यद्यपि धारा 438(1) के निबंधन विवेकाधिकार प्रदत्त करते हैं, तो भी धारा 438(2) "निदेश में न्यायालय को ऐसी शर्तें सम्मिलित करने की शक्ति प्रदत्त

करती है, जो उस विशिष्ट मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए वह ठीक समझे, जिनके अंतर्गत ऐसी शर्तें भी हैं जो उस उपधारा के खंड (i) से (iv) में वर्णित है ।"

(ii) धारा 438(1) के अधीन आदेश अनुदत्त करने से किसी अपराध के अन्वेषण में स्वत: बाधा उत्पन्न नहीं होती है; धारा 438(1)(i) और (ii) में यह आदिष्ट है कि अभियुक्त/अपीलार्थी को अन्वेषण में सहयोग करना चाहिए । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह कहा गया है कि न्यायालय जमानत को शासित करने वाली समुचित शर्तें भी अधिरोपित कर सकता है । एक शर्त यह हो सकती है कि यदि पुलिस द्वारा यह मामला बनाया जाता है कि धारा 27 (साक्ष्य अधिनियम, 1872) के अधीन वस्तुओं की बरामदगी या तथ्यों का पता चलने की संभावना है, तो अभियुक्त को अभिरक्षा में लिया जा सकता है । उसके संबंध में संहिता की धारा 46 में कोई औपचारिक पद्धति विहित नहीं की गई है, यदि (पुलिस को) किए गए कथन के दौरान बरामदगी की जाती है और इसके अनुसरण में अभियुक्त से तथ्य का पता चला है, तो यह "समझी गई गिरफ्तारी" के दौरान की गई बरामदगी का मामला होगा । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 19)

(iii) अभियुक्त अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए विशेष मामला बनाने के लिए आबद्ध नहीं है; व्यापक शक्ति का अन्यथा अनुशीलन न्यायालय के विवेकाधिकार को बाधित करेगा । जब कभी आवेदन (धारा 438 के अधीन राहत के लिए) किया जाता है, तो विवेकाधिकार का प्रयोग सदैव प्रत्येक मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए न्यायसम्मत रूप से और सावधानी से किया जाना चाहिए । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 21)

(iv) जबकि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति मामूली नहीं है, साथ ही साथ, इसका प्रयोग आपवादिक मामलों तक सीमित नहीं है । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 22)

(v) न्यायालयों से यह अपेक्षा करना न्यायोचित नहीं है कि अभियुक्त द्वारा बनाए गए विशेष मामलों में ही अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाए, चूंकि यह शक्ति असाधारण है, या यह कि धारा 437

में वर्णित कई बातों-या अन्य बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 24-25)

(vi) अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति पर अति उदार रूप से निर्बंधन लगाने (या अर्थ लगाने) से यह सांविधानिक रूप से आलोचना का विषय हो जाएगी । चूंकि ऋजु प्रक्रिया अनुच्छेद 21 का भाग है, इसलिए न्यायालय को इस उपबंध (अर्थात् धारा 438) को "इसमें जो शब्द मौजूद नहीं हैं, मौजूदगी की बात कहकर" चुनौती का विषय नहीं बनाना चाहिए । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 26)

(vii) ऐसा कोई "कठोर नियम" नहीं है कि अग्रिम जमानत तब तक अनुदत्त नहीं की जा सकती है, जब तक कि आवेदक असद्भाव का शिकार न हो । ऐसी बहुत-सी सुसंगत बातें हैं, जिनको न्यायालय द्वारा इस बात पर विचार करते समय महत्व दिया जाना चाहिए कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करनी है या अस्वीकार करनी है । प्रस्थापित आरोपों की प्रकृति और गंभीरता, ऐसी घटनाओं का संदर्भ जिनके परिणामस्वरूप आरोपों का लगाया जाना संभाव्य हो, यह युक्तियुक्त संभावना कि विचारण के समय आवेदक की उपस्थिति सुनिश्चित नहीं की जा सकती है, यह युक्तियुक्त आशंका की साक्षियों को तोड़ लिया जाएगा और "जनता या राज्य के व्यापक हित" की कुछ अन्य बातें हैं । राहत (अग्रिम जमानत की) की ईप्सा करने वाला व्यक्ति उपधारणात्मक रूप से निर्दोष बना रहता है । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 31)

(viii) यह उपधारणा नहीं की जा सकती है कि किसी वर्ग के अभियुक्तों का अर्थात् जो विशिष्ट अपराधों के लिए अभियुक्त हैं, या जो निर्धन वर्ग के हैं, फरार हो जाना संभाव्य है । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 32)

(ix) न्यायालयों को अग्रिम जमानत के आवेदनों पर विचार करते समय अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए (जैसा कि वे जमानत के मामले में करते हैं) । अपने विवेकाधिकार को "साधारण प्रयोज्यता के अनम्य नियम" विहित करके वंचित या सीमित करना बुद्धिमानी नहीं होगी । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 33)

(x) आवेदक, जो अग्रिम जमानत की ईप्सा करता है, की आशंका

(अपनी सन्निकट या संभाव्य गिरफ्तारी के बारे में) युक्तियुक्त आधारों पर आधारित होनी चाहिए और ऐसे वस्तुपरक तथ्यों और सामग्री पर टिकी होनी चाहिए, जो न्यायालय द्वारा परीक्षा और मूल्यांकन किए जाने लायक हों, न कि अस्पष्ट अवर्णित आशंकाओं पर । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 35)

(xi) अग्रिम जमानत के लिए ईप्सा करने वाले आधारों की उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए और उन्हें संबंधित मजिस्ट्रेट द्वारा विनिश्चय करने के लिए प्रश्न नहीं छोड़ना चाहिए । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 36)

(xii) धारा 438 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट का फाइल किया जाना एक पूर्ववर्ती शर्त नहीं है; इस शक्ति का प्रयोग सन्निकट गिरफ्तारी (आवेदक की) का युक्तियुक्त विश्वास दर्शित करने पर किया जा सकता है । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 37)

(xiii) अग्रिम जमानत प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने के पश्चात् भी – जब तक आवेदक को गिरफ्तार नहीं किया जाता है, अनुदत्त की जा सकती है । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 38-39)

(xiv) धारा 438 के अधीन एक सर्वग्राही आदेश पुलिस को यह निदेश देते हुए जारी नहीं किया जाना चाहिए कि आवेदक को "जब कभी भी गिरफ्तार किया जाएगा और जिस किसी भी अपराध के लिए गिरफ्तार किया जाएगा", जमानत पर छोड़ दिया जाएगा । विनिर्दिष्ट तथ्यों के संबंध में युक्तियुक्त आशंका (भले ही सटीकता से वर्णित न हों) के आधार पर आदेश किया जा सकता है । सर्वग्राही आदेश से विधि को प्रवर्तित करने के लिए पुलिस के कर्तव्यों और भविष्य में अपराधों के कारित होने को रोकने में गंभीर रूप से हस्तक्षेप कारित होगा । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 40-41)

(xv) धारा 438 के अधीन आवेदन पर विचार करने के उपरांत लोक अभियोजक को सूचना जारी की जानी चाहिए; अंतरिम आदेश किया जा सकता है । आवेदन पर "पक्षकारों की अपनी-अपनी दलीलों को ध्यान में रखते हुए पुन:परीक्षा की जानी चाहिए ।" अंतरिम आदेश भी अवश्य इस

धारा की अपेक्षाओं के अनुरूप होना चाहिए और इस प्रक्रम पर भी आवेदक पर उपयुक्त शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिएं । क्या धारा 438(1) के अधीन किए गए आदेश के प्रवर्तन को निश्चित समय तक सीमित रहना चाहिए ? यह आवश्यक नहीं है । यदि ऐसा करने के लिए कारण मौजूद हैं, तो न्यायालय आदेश की परिधि के भीतर आने वाले विषय के संबंध में प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद भी संक्षिप्त कालावधि तक आदेश के प्रवर्तन को सीमित कर सकेगा । ऐसे मामलों में आवेदक को इस बात का आदेश दिया जा सकता है कि वह संहिता की धारा 437 या 439 के अधीन यथापूर्वोक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट के फाइल किए जाने के बाद युक्तियुक्त रूप से संक्षिप्त कालावधि के भीतर जमानत का आदेश अभिप्राप्त कर ले । किंतु इस बात का अनुसरण अपरिवर्तनीय नियम के रूप में किए जाने की आवश्यकता नहीं है । प्रसामान्य नियम किसी कालावधि के संबंध में आदेश के प्रवर्तन को सीमित करना नहीं होना चाहिए । (सिब्बिया वाले मामले का पैरा 42)

46. अत: यह पूर्णतया स्पष्ट है कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में बृहत्तर, संविधान न्यायपीठ की विचारणा यह थी कि उस लाभ और महत्व पर विचार करते हुए जो संविधान और अनुच्छेद 21 में स्वाधीनता को दिया गया है और इस बात पर विचार करते हुए कि अवांछित गिरफ्तारियों द्वारा कभी-कभी तंग करने की प्रवृत्ति देखी गई है, अग्रिम जमानत के लिए उपबंध किया गया था । इसे या तो इसकी अवधि के बारे में या अभिकथित अपराधों, जिनको कारित करने के लिए आवेदक अभियुक्त हो, के बारे में किन्हीं शर्तों या परिसीमाओं में नहीं जकड़ा गया है । न्यायालयों को ऐसी परिसीमाएं (जैसे अन्वेषण में सहयोग करना, साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ न करना, देश न छोड़ना आदि) अधिरोपित करने का विवेकाधिकार है जो किसी प्रस्तुत मामले की विचित्र परिस्थितियों में युक्तियुक्त और आवश्यक हों । तथापि,, <u>ऐसा कोई अत्यावश्यक या अनम्य नियम नहीं है कि आवेदक को एक विशेष मामला बनाना चाहिए, या यह कि राहत, समय के हिसाब से, सीमित अवधि के लिए होनी चाहिए, या अपराधों के किसी विशिष्ट वर्ग के लिए अनुपलब्ध है ।</u>

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

47. इस प्रक्रम पर, कुछ पश्चात्वर्ती मामलों में इस बारे में की गई मताभिव्यक्तियों पर संदेह को दूर करना आवश्ययक है कि क्या धारा 438 अनुच्छेद 21 का आवश्यक तत्व है या नहीं । कुछ निर्णयों, विशिष्ट रूप से **राम किशन बालोथिया** और **एक अन्य** (उपर्युक्त) और **जय प्रकाश सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामलों में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अग्रिम जमानत का उपबंध अनुच्छेद 21 का आवश्यक संघटक नहीं है, विशिष्ट रूप से अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय राहत को समय के हिसाब से सीमित करने, या अपराध की प्रकृति, या किसी घटना के घटने के संबंध में कुछ अन्य निर्बंधन लगाने के न्यायालय के विवेकाधिकार के संदर्भ में । हमें खेद है, ऐसी मताभिव्यक्तियां **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ द्वारा घोषित शक्ति के व्यापक निबंधनों के प्रतिकूल हैं । बृहत्तर न्यायपीठ ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया है कि "ऐसे निर्बंधनों और शर्तों को जो कि धारा 438 में मौजूद नहीं हैं, अति-उदार रूप से अधिरोपित करने के परिणामस्वरूप उसके उपबंध सांविधानिक रूप से आलोचना के विषय हो जाएंगे, क्योंकि दैहिक स्वतंत्रता का अधिकार अयुक्तियुक्त निर्बंधनों के अनुपालन पर निर्भर नहीं रखा जा सकता है ।"

48. **गुडिकांति नरसिंहलू** बनाम **लोक अभियोजक**[2] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि :–

> ".....जब जमानत से इनकार किया जाता है तो दैहिक स्वाधीनता से वंचित किया जाता है जो अनुच्छेद 21 के अधीन मान्यताप्राप्त हमारी सांविधानिक पद्धति की यह एक अत्यधिक मूल्यवान वस्तु है कि इसको समाप्त करने को निश्चायक शक्ति ऐसा महान विश्वास है जिसका प्रयोग यूं ही नहीं बल्कि न्यायिक रूप से किया जाना चाहिए जिसके लिए अत्यधिक चिंता का विषय व्यक्ति और समाज होने चाहिएं । वैचारिक आदेशों को कुछ अवसरों पर वैवेकिक रूप में आकर्षक बनाने से मुकदमे-बाजी मूल अधिकार

---

[1] (2012) 4 एस. सी. सी. 379.

[2] [1978] 4 उम. नि. प. 1001 = (1978) 1 एस. सी. सी. 240.

की विनिश्चायक हो जाती है । आखिरकार किसी अभियुक्त अथवा सिद्धदोष व्यक्ति को दैहिक स्वाधीनता मूलभूत होती है जो 'विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया' अनुसार ही विधिक रूप से समाप्त की जा सकती है ।"

49. संहिता में धारा 438 के अधिनियमन का कारण था एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक देश में दैहिक स्वतंत्रता के निर्णायक ठोस आधार को संसद् की स्वीकृति । संसद् ने दैहिक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान को प्रोत्साहित किया और दंड-न्यायशास्त्र के इस मूलभूत सिद्धांत को प्रमुखता दी कि प्रत्येक व्यक्ति के तब तक निर्दोष होने की उपधारणा की जाती है, जब तक वह दोषी नहीं पाया जाता है या पाई जाती है । जीवन और स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति के संजोकर रखे गए अधिकार हैं । प्रत्येक मनुष्य की स्वतंत्रता के लिए लालसा स्वाभाविक है । धारा 438 प्रत्येक ऐसे व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता से संबंधित एक प्रक्रियात्मक उपबंध है, जो निर्दोषिता की उपधारणा के फायदे का हकदार है । चूंकि जमानत से इनकार करना दैहिक स्वतंत्रता से वंचित करना है, इसलिए न्यायालय को धारा 438 की व्याप्ति पर अनावश्यक निर्बंधन अधिरोपित करने के विरुद्ध प्रवृत्ति होनी चाहिए, विशेष रूप से जब विधान-मंडल द्वारा ऐसे निर्बंधन अधिरोपित नहीं किए गए हैं । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि :–

> "अग्रिम जमानत व्यक्ति की स्वतंत्रता को सुनिश्चित करने की एक युक्ति है; यह न तो अपराध कारित करने का एक पासपोर्ट है और न ही किसी और सभी प्रकार के, संभाव्य या असंभाव्य अभियोगों के विरुद्ध एक ढाल है ।"

50. धारा 438 का यह निर्वचन कि इसमें अनुच्छेद 21 की विशेषताएं समाहित नहीं हैं, गलत है । इस न्यायालय की यह राय है कि मुद्दा यह नहीं है कि धारा 438 अनुच्छेद 21 का अंतर्निहित तत्व है या नहीं : बल्कि यह है कि क्या वह उपबंध ऋजु प्रक्रिया का भाग है । इस बारे में, कोई संदेह नहीं हो सकता है कि अग्रिम जमानत के लिए उपबंध स्वाधीनता का समर्थक है और किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी की प्रत्याशा होने पर इस निदेश के लिए न्यायालय में समावेदन करने की सुविधा के लिए समर्थ बनाता है कि उसे (पुरुष या स्त्री) गिरफ्तार न किया जाए;

इस उपबंध को विनिर्दिष्ट रूप से पुलिस द्वारा की जाने वाली ऐसी मनमानी गिरफ्तारियों और किए जाने वाले अपमान के प्रति संरक्षा के एक अध्युपाय के रूप में अधिनियमित किया गया था, जिसे स्वयं संसद् ने पुलिस की ओर से एक व्यापक रुग्णता के रूप में माना है ।

51. **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा विधि आयोग की इक्तालीसवीं और अड़तालीसवीं रिपोर्टों का उल्लेख किया गया था । उसके पश्चात्, विधि आयोग ने अपनी 154वीं रिपोर्ट में इस विषय पर विचार किया था; उसने धारा 438 में प्रक्रियात्मक परिवर्धनों के सिवाय-किसी सारभूत परिवर्तन की सिफारिश नहीं की और निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "18. विभिन्न कार्यशालाओं में अग्रिम जमानत के उपबंध को प्रतिधारित करने या समाप्त करने के संबंध में विविध मत व्यक्त किए गए हैं । एक मत यह है कि समाज के धनी और प्रभावशाली वर्गों के अभियुक्तों द्वारा इसका दुरुपयोग किया जा रहा है, इसलिए इसे संहिता से हटा दिया जाए । अन्य मत यह है कि दैहिक स्वाधीनता के रक्षोपाय के लिए यह एक श्रेयस्कर उपबंध है और इसलिए प्रतिधारित किया जाए । इस उपबंध के दुरुपयोग के कुछ दृष्टांत इसको हटा देने का आधार नहीं हो सकता है । तथापि,, ऐसे दुरुपयोग को कम करने के लिए कुछ निर्बंधन अधिरोपित किए जा सकते हैं । तथापि,, हमारी यह राय है कि धारा 438 में अग्रिम जमानत से संबंधित उपबंध संहिता में बना रहना चाहिए किंतु यह दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) विधेयक, 1994 के खंड 43 में सुझाए गए संशोधनों के अध्यधीन होना चाहिए, जिसमें पर्याप्त रक्षोपाय अधिकथित किए गए हैं । प्रस्तावित 1994 के संशोधन के खंड 43 का सुसंगत उद्धरण निम्नलिखित है –
>
> मूल अधिनियम की धारा 438 में उपधारा (1) के स्थान पर निम्नलिखित उपधाराएं प्रतिस्थापित की जाएंगी, अर्थात् –
>
> "(1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि, हो सकता है उसको किसी अजमानतीय

अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जाए, तो वह इस धारा के अधीन इस निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर छोड़ दिया जाए; और वह न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात्, अर्थात् –

(i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त, जिसके अंतर्गत यह तथ्य भी है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध की बाबत किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध करने पर कारावास भुगता है;

(iii) आवेदक के न्याय से बचकर भागने की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या अपमानित करने के आक्षेप के साथ लगाया गया है, या तो आवेदन को तुरंत नामंजूर कर सकेगा या अग्रिम जमानत के लिए अंतरिम आदेश जारी कर सकेगा :

परंतु जहां यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया है, वहां किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी आवेदक को वारंट के बिना गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा, यदि ऐसी गिरफ्तारी के लिए युक्तियुक्त आधार हैं ।

(1-क) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश अनुदत्त करता है, वहां न्यायालय तुरंत एक सूचना, जो सूचना सात दिनों से अन्यून की न हो, ऐसे आदेश की एक प्रति के साथ, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को तामील किए जाने के लिए, लोक अभियोजक को उस समय सुने जाने का अवसर देने की दृष्टि से जब न्यायालय द्वारा आवेदन पर अंतिम रूप से सुनवाई

की जाएगी, भिजवाएगा ।

(1-ख) अग्रिम जमानत की ईप्सा करने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई करने और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित करने के समय पर आबद्धकर होगी, यदि न्यायालय लोक अभियोजक द्वारा उसे किए गए आवेदन पर न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति को अवश्य समझता है ।"

दिलचस्प बात यह है कि विधि आयोग की 177वीं रिपोर्ट में खेद व्यक्त किया गया था कि पुलिस द्वारा गिरफ्तार करने की शक्ति का व्यापक रीति में दुरुपयोग किया जा रहा है । दिसम्बर, 2001 में प्रस्तुत की गई विधि आयोग की 177वीं रिपोर्ट में पैरा 1.8 में यह कहा गया था :–

"**गिरफ्तारी की शक्ति का दुरुपयोग** :– दंड प्रक्रिया संहिता और संविधान में अंतर्विष्ट ऊपर निर्दिष्ट रक्षापायों के होते हुए भी, वास्तविकता यह है कि संपूर्ण देश में मामलों की बहुत बड़ी संख्या में गिरफ्तार करने की शक्ति का प्रयोग गलत रूप से और अवैध रूप से किया जाता है । प्राय: इस शक्ति का उपयोग धन और अन्य मूल्यवान संपत्ति ऐंठने या गिरफ्तार किए गए व्यक्ति के दुश्मन की प्रेरणा पर किया जाता है । यहां तक कि सिविल विवाद के मामले में भी, किसी सिविल विवाद के एक पक्षकार के विरुद्ध उसके विरोधी की प्रेरणा पर किसी मिथ्या अभिकथन के आधार पर इस शक्ति का आश्रय लिया जा रहा है । किसी जमानतीय अपराध के मामले में भी (न केवल वहां जहां जमानतीय अपराध संज्ञेय अपराध है अपितु वहां भी जहां यह अजमानतीय अपराध है) किसी व्यक्ति को गिरफ्तार का दंड प्रक्रिया संहिता द्वारा दिया गया व्यापक विवेकाधिकार और इसके अतिरिक्त निवारक गिरफ्तारी करने की शक्ति (उदाहरण के लिए, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 151 और कई नगर पुलिस अधिनियमितियों के अधीन) पुलिस को असाधारण शक्ति देती है, जिसका आसानी से दुरुपयोग किया जा सकता है । ऐसे अनुचित प्रयोग या दुरुपयोग पर नियंत्रण के लिए न तो पुलिस विभाग में कोई आंतरिक क्रियाविधि है और न ही ऐसे अनुचित प्रयोग या दुरुपयोग के बारे में उच्च पुलिस अधिकारियों को शिकायत करने का कुछ आपवादिक मामलों को छोड़कर, लाभ

होता है । हमें अवश्य यह दोहराना है कि हम किसी सेवा के सदस्यों की व्यापक वैवेकिक शक्तियों, जो अग्न्यायुध के साथ प्रदान की गई है, पर विचार नहीं कर रहे हैं जो कि दिनोंदिन अधिकाधिक जटिल बनती जा रही हैं (जिसे तकनीकी रूप से सेवा न्यायशास्त्र के प्रयोजनार्थ सिविल सेवा कहा जाता है) और उनके कार्य इस देश के नागरिकों की स्वतंत्रता और स्वाधीनता, न कि मात्र उनकी हकदारियों और संपत्तियों, को प्रभावित करते हैं ।"

52. अवांछित गिरफ्तारियों की घटना की निरंतरता को **अरनेश कुमार** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा यह कहते हुए कड़ी आलोचना की गई थी कि स्वतंत्रता के छह दशकों के बावजूद पुलिस का यह उपनिवेशी दृष्टिकोण रहा है कि गिरफ्तारी की शक्ति को :–

> ".....बड़े पैमाने पर तंग करने, दमन करने के हथियार के रूप में समझा जाता है और निश्चित रूप से उसे जनता का मित्र नहीं समझा जाता है । गिरफ्तार करने की प्रचंड शक्ति का प्रयोग करने में सावधानी बरतने की आवश्यकता पर न्यायालयों द्वारा बारम्बार जोर दिया गया है, किंतु वांछित परिणाम नहीं निकला है । गिरफ्तार करने की शक्ति इसके अहंकार को बढ़ाने में योगदान करती है और साथ ही इस पर नियंत्रण करने में दंड-नायकों की असफलता का भी योगदान है । केवल इतना ही नहीं, गिरफ्तार करने की शक्ति पुलिस के भ्रष्टाचार का एक लाभप्रद स्रोत है । पहले गिरफ्तारी और फिर शेष कार्यवाही करने की मनोवृत्ति तिरस्कार योग्य है । यह ऐसे पुलिस अधिकारियों का हथियार बन गया है जिनमें संवेदनशीलता की कमी है और टालमटोल के हेतु से कार्य करते हैं ।"

विधि आयोग की हाल ही की रिपार्ट (268वीं रिपोर्ट, 2017) में यह उल्लेख किया गया है कि "भारत में कारागार की 67 प्रतिशत जनसंख्या विचारण की प्रतीक्षा कर रही है"। अत: अग्रिम जमानत सुनिश्चित करने के उपबंध की आवश्यकता इतनी निर्णायक है, जितनी यह इसके पुर:स्थापन के समय थी, और जिस समय **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय किया गया था ।

53. **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले के पश्चात्, **सलाउद्दीन**

(उपर्युक्त) वाले मामले से आरंभ होकर, सुनाए गए निर्णयों में दिए गए कारणों में इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि अग्रिम जमानत के आदेशों को शर्तों द्वारा, विशिष्ट रूप से समय के संबंध में (अर्थात् तीन माह, आदि) या कतिपय घटना के घटने तक, निर्बंधित किया जाना चाहिए । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की अवधि को सीमित करने के लिए दिए गए कारणों और की गई मताभिव्यक्तियों को नीचे प्रस्तुत किया जाता है:–

(1) "अग्रिम जमानत के ऐसे आदेश केवल एक सीमित अवधि के लिए होने चाहिएं और सामान्यतया उस अवधि या विस्तार की गई अवधि के पर्यवसान पर अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाले न्यायालय को यह नियमित न्यायालय पर छोड़ देना चाहिए कि वह अन्वेषण के कार्य में प्रगति होने के पश्चात् या आरोप पत्र के प्रस्तुत किए जाने के पश्चात् उसके समक्ष प्रस्तुत किए गए साक्ष्य का मूल्यांकन करके मामले पर विचार करे ।" [**सलाउद्दीन और के. एल. वर्मा,** (उपर्युक्त) वाले मामले]

(2) अग्रिम जमानत का आदेश "गंभीर प्रकृति के, उदाहरण के लिए हत्या" के मामलों में अनुदत्त किया जा सकता है । परिणामस्वरूप, इसकी अवधि को 'सीमित किया जाना चाहिए और सामान्यतया अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाले न्यायालय को स्वयं को उस मूल न्यायालय के स्थान पर प्रतिस्थापित नहीं कर लेना चाहिए जिससे अपराध पर विचार करने की प्रत्याशा की जाती है । [**सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाला मामला]

(3) आपराधिक षड्यंत्रों में सामग्री के प्रकटन के लिए 'अभियुक्त को अभिरक्षा में लेकर परिप्रश्न करना (आपराधिक षड्यंत्रों में अंतर्वलित सभी कड़ियों को प्रकट करने के लिए) अपरिहार्य रूप से आवश्यक है । [**बिमल कृष्ण कुंडु** तथा **मुरलीधरण** (उपर्युक्त) वाले मामले]

(4) समय-सीमाएं अधिरोपित करना (प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने, या आरोप पत्र के फाइल होने, आदि तक) उस न्यायालय को, जो मुख्य मामले को अभिग्रहण करता है और इसको मानिटर करता

है, प्रकट की गई नई सामग्री और जिसे अभियोजन साक्ष्य के रूप में सम्मिलित किया गया है, को ध्यान में रखते हुए अपराध की प्रकृति और गंभीरता पर विचार करने के लिए समर्थ बनाएगा । अत: न्यायालयों से यह अपेक्षा करना हितकर और लोक हित में होगा कि अग्रिम जमानत के आदेशों की कालावधि के लिए समय-सीमाएं अधिरोपित करें । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट या आरोप पत्र के फाइल होने की घटना धारा 438 के अधीन आदेश के आवश्यक संघटक हैं (**सलाउद्दीन**, **के. एल. वर्मा,** और **अदरी धरन दास** वाले मामले) ।"

कुछ विनिश्चयों में इस बात पर बल दिया गया है कि आर्थिक अपराधों में एक भिन्न दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है और इसलिए अग्रिम जमानत सहज ही अनुदत्त नहीं की जानी चाहिए । **पी. चिदम्बरम** बनाम **प्रवर्तन निदेशालय**[1] वाले मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया था :–

"तथापि,, न्यायालय को अवश्य यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि दांडिक अपराध मात्र किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध नहीं है, बल्कि बृहत्तर समाज का हित खतरे में होता है । इसलिए दो अधिकारों – व्यक्ति की दैहिक स्वतंत्रता और सामाजिक हित के बीच एक सूक्ष्म संतुलन को सिद्ध किया जाना अपेक्षित है.....।

83. अन्वेषण के प्रक्रम पर अग्रिम जमानत अनुदत्त करने से अन्वेषक अभिकरण को अभियुक्त से परिप्रश्न करने और उपयोगी जानकारी तथा ऐसी सामग्री एकत्रित करने में विफल कर सकती है जो छिपाई गई हो सकती है । यदि अभियुक्त जानता है कि वह न्यायालय के आदेश द्वारा संरक्षित है, तो वह ऐसे परिप्रश्नों से बचकर निकल जाएगा । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने से, विशिष्ट रूप से आर्थिक अपराधों में, निश्चित रूप से प्रभावी अन्वेषण में बाधा आएगी । प्रत्यर्थी प्रवर्तन निदेशालय द्वारा कथित रूप से एकत्रित सामग्री को ध्यान में रखते हुए और अन्वेषण के प्रक्रम पर विचार करते हुए हमारा यह मत है कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए यह एक उपयुक्त मामला नहीं है ।

---

[1] (2019) 9 एस. सी. सी. 24.

इस न्यायालय ने अन्य पूर्ववर्ती विनिश्चयों अर्थात् राज्य **बनाम** अनिल शर्मा (1997) 7 एस. सी. सी. 187; सुधीर **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (2016) 1 एस. सी. सी. 146 और प्रवर्तन निदेशालय **बनाम** हसन अली खान (2011) 12 एस. सी. सी. 684 वाले मामलों को भी निर्दिष्ट किया ।"

54. पहले उद्धृत किए गए विभिन्न विनिश्चयों की पूर्ण विचारणा, विशेष रूप से उनकी जिनमें अग्रिम जमानत के आदेश की कालावधि को सीमित करने की आवश्यकता पर बल दिया गया है, इस समझ पर आधारित है कि जमानत का अशर्त आदेश अनुदत्त करने से अन्वेषण विफल हो जाएगा । पहली बात तो यह कि यह आधार इस बात पर विचार करते हुए निराधार है कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले (पैरा 13) में यह कहा गया है कि ऐसा आदेश धारा 438 के "निबंधनों के प्रतिकूल" होगा; और इसके अलावा जो शर्तें धारा 438(2) में वर्णित हैं, अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय अधिरोपित की जा सकती हैं । यहां, इस तथ्य का भान होना चाहिए कि शर्तें अधिरोपित करने की आवश्यकता ["कर सकेगा" (मे) शब्द को ध्यान में रखते हुए जो शर्तें अधिरोपित करने की आवश्यकता से पूर्व आया है] बाध्यकर नहीं है । फिर भी, अशर्त आदेश, इस अर्थ में आदेश जिसमें धारा 438(2) में वर्णित शर्तें भी अधिरोपित नहीं हैं, अन्वेषण को बाधित कर सकता है या रुकावट पैदा कर सकता है, **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि इस उपबंध में वर्णित शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिए । राहत प्रदान करते समय, यह आवश्यकता ज्यादातर प्रज्ञा का विषय है ।

55. यह न्यायालय इस तथ्य की अनदेखी नहीं कर सकता है कि विधि आयोग की 41वीं और 48वीं रिपोर्ट में एक विशिष्ट समस्या, अर्थात् अवांछित गिरफ्तारियों से निपटने के लिए एक निवारक या आरोग्यकारी उपाय के रूप में इस उपबंध (अग्रिम जमानत) को पुर:स्थापित करने की आवश्यकता पर ध्यान केंद्रित किया गया था । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस तथ्य पर विचार किया गया था और महत्वपूर्ण रूप से इस तथ्य पर भी कि धारा 438 शर्तें अधिरोपित करने के लिए न्यायालय की शक्ति पर कोई बाध्यता नहीं डालती है ।

यह स्थिति अपरिवर्तित रही : यह उपबंध अपरिवर्तित रहा – कम से कम सारभूत रूप से (2005 में संशोधन को वर्जित करते हुए, जिसमें अग्रिम जमानत के लिए कोई आदेश जारी करने से पूर्व लोक अभियोजक को सूचना जारी किया जाना आबद्धकर बनाया गया था)[1] ।

---

[1] संशोधन अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 2005-जिसे अभी तक प्रवृत्त नहीं किया गया है, निम्न प्रकार से है :–

(1) जब किसी व्यक्ति को यह विश्वास करने का कारण है कि हो सकता है उसको किसी अजमानतीय अपराध के किए जाने के अभियोग में गिरफ्तार किया जाए, तो वह इस धारा के अधीन इस निदेश के लिए उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय को आवेदन कर सकता है कि ऐसी गिरफ्तारी की स्थिति में उसे जमानत पर छोड़ दिया जाए; और वह न्यायालय अन्य बातों के साथ-साथ, निम्नलिखित बातों पर विचार करने के पश्चात्, अर्थात् –

(i) अभियोग की प्रकृति और गंभीरता ;

(ii) आवेदक का पूर्ववृत्त, जिसके अंतर्गत यह तथ्य भी है कि क्या उसने पहले किसी संज्ञेय अपराध की बाबत किसी न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध करने पर कारावास भुगता है;

(iii) आवेदक के न्याय से बचकर भागने की संभाव्यता ; और

(iv) जहां अभियोग आवेदक को इस प्रकार गिरफ्तार कराकर उसे क्षति पहुंचाने या अपमानित करने के आक्षेप के साथ लगाया गया है, या तो आवेदन को तुरंत नामंजूर कर सकेगा या अग्रिम जमानत के लिए अंतरिम आदेश जारी कर सके :

परंतु जहां यथास्थिति, उच्च न्यायालय या सेशन न्यायालय ने इस उपधारा के अधीन कोई अंतरिम आदेश पारित नहीं किया है या अग्रिम जमानत के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया है, वहां किसी पुलिस थाने का भारसाधक अधिकारी आवेदक को वारंट के बिना गिरफ्तार करने के लिए स्वतंत्र होगा, यदि ऐसी गिरफ्तारी के लिए युक्तियुक्त आधार हैं ।

(1-क) जहां न्यायालय उपधारा (1) के अधीन अंतरिम आदेश अनुदत्त करता है, वहां न्यायालय तुरंत एक सूचना, जो सूचना सात दिनों से अन्यून की न हो, ऐसे आदेश की एक प्रति के साथ, लोक अभियोजक और पुलिस अधीक्षक को तामील किए जाने के लिए, जोकि अभियोजक को उस समय सुने जाने का अवसर देने की दृष्टि से जब न्यायालय द्वारा आवेदन पर अंतिम रूप से सुनवाई की जाएगी, भिजवाएगा ।

(1-ख) अग्रिम जमानत की ईप्सा करने वाले आवेदक की उपस्थिति आवेदन की अंतिम सुनवाई करने और न्यायालय द्वारा अंतिम आदेश पारित करने के समय पर आबद्धकर होगी, यदि न्यायालय लोक अभियोजक द्वारा उसे किए गए आवेदन पर न्याय के हित में ऐसी उपस्थिति को अवश्य समझता है ।

विधि आयोग की 203वीं रिपोर्ट में, जिसमें इस विषय पर संपूर्ण विधि का पुनर्विलोकन किया गया था और सलाउद्दीन, अदरी नारायण दास आदि जैसे बाद के विनिश्चयों का उल्लेख किया गया था, शर्तों से संबंधित इस पहलू पर विधि में किसी परिवर्तन की सिफारिश नहीं की थी । इस पृष्ठभूमि में, यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि इस शक्ति (अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की) का प्रयोग करने पर संसद् द्वारा अधिरोपित एकमात्र वर्जन या निर्बंधन एक सकारात्मक निर्बंधन के रूप में है अर्थात् उस मामले में जहां अभियुक्तों ने भारतीय दंड संहिता की धारा 376(3) या धारा 376कख या धारा 376घक या धारा 376घख के अधीन दंडनीय अपराध कारित किए हों । दूसरे शब्दों में, संसद् ने अब ऐसे अपराधों के उन अभियुक्तों को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए न्यायालयों (अर्थात् सेशन न्यायालय और उच्च न्यायालय) की अधिकारिता से इनकार कर दिया है । संशोधन (दंड प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम, 2018) में धारा 438(4) को पुर:स्थापित किया गया था, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "(4) इस धारा की कोई बात ऐसे किसी मामले को लागू नहीं होगी, जिसमें किसी व्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 376 की उपधारा (3) या धारा 376कख या धारा 376घक या धारा 376घख के अधीन अपराध कारित करने के अभियोग पर गिरफ्तार करना अंतर्वलित हो ।"

56. अत: स्पष्ट रूप से, जहां संसद् ने <u>संहिता की धारा 438 के अधीन न्यायालयों की शक्ति को अपवर्जित या निर्बंधित करना चाहा, वहां उसने ऐसा स्पष्ट शब्दों में किया ।</u> अन्य अपराधों के अभियुक्तों के अग्रिम जमानत की ईप्सा करने के नागरिकों के अधिकार को निर्बंधित करने में संसद् द्वारा किए गए विलोप से आवश्यक रूप से कोई भी यह अनुमान लगा सकता है कि इस न्यायालय द्वारा न तो सर्वग्राही निर्बंधन होने का अर्थ लगाया जा सकता है, और न ही विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए अनम्य मार्गदर्शक सिद्धांतों पर जोर दिया जा सकता है – ऐसा करना न्यायिक विधायन की कोटि में आएगा ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

57. अब उन विभिन्न चिंताओं पर विचार करते हैं जिन्होंने **सलाउद्दीन, के. एल. वर्मा, सुनीता देवी, निर्मल जीत कौर, अदरी धरन दास, एचडीएफसी बैंक** और **जे. जे. मेनन** (उपर्युक्त) वाले मामलों और अन्य विनिश्चयों में, जिनमें विभिन्न सरोकारों को उजागर किया अन्वेषक अभिकरण, या पुलिस द्वारा सामना की जाने वाली कठिनाइयों या यह कि सक्षम न्यायालय निरीक्षण से वंचित हो जाएंगे, इस न्यायालय को ये निदेश देने के लिए प्रेरित किया कि न्यायालयों को समय से संबंधित निर्बंधन अधिरोपित करने चाहिएं, या अस्थायी अथवा सीमित जमानत (उदाहरण के लिए, आरोप पत्र के फाइल होने आदि पर) अनुदत्त करनी चाहिए, यह न्यायालय इसके पश्चात् ऐसे तर्काधारों पर विचार करेगा ।

58. वे विभिन्न कारण, जिन्होंने पहले उल्लिखित किए गए विनिश्चयों द्वारा निर्बंधन या परिसीमाएं अधिरोपित करने के लिए प्रेरित किया, इन बातों पर निर्भर हैं, यथा– अधिक गंभीर अपराधों का जोड़ा जाना जो आवेदक द्वारा अभिकथित रूप से अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के पश्चात् कारित किए गए हैं; गंभीर अपराधों में आवेदक या आवेदिका की सहापराधिता उदाहरण के लिए, षड्यंत्रकारी या गुर्गा होने की बात को प्रकट करने वाले तथ्यों का प्रकटीकरण, अन्वेषण के अनुक्रम में अभियुक्त का असहयोग (जैसे, उदाहरण के लिए, उसकी उपस्थिति सुनिश्चित करने में कठिनाई, उसके द्वारा अपवंचना, अन्वेषण के दौरान प्रश्नों का उत्तर देने या साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के निबंधनों के अनुसार वस्तुओं की बरामदगी के प्रयोजनों के लिए कथन करने में अरुचि); हत्या, व्यपहरण, अप्रायिक परिस्थितियों में मृत्यु कारित करने जैसे अति गंभीर या संगीन अपराधों और ऐसे अपराधों में अंतर्ग्रस्तता जो अर्थव्यवस्था को नष्ट करते हैं; इस जानकारी का प्रकटीकरण कि अपराध में बड़े पैमाने पर कपट और कई व्यक्ति या विपदग्रस्त अंतर्वलित हैं, और आरोप पत्र का फाइल किया जाना । इनमें से प्रत्येक या सभी को एक साथ रखने पर, इस न्यायालय की राय में, न तो दुर्गम कठिनाई है, और न ही ये अप्रत्याशित परिस्थितियां हैं या न ही **सिब्बिया** (उपर्युक्त)

वाले मामले में प्रत्याशा की गई है ।

59. धारा 438(2) के अधीन नियंत्रणकारी अभिव्यक्तियों में ऐसी तीन सुभिन्न शर्तें उल्लिखित हैं, जिन्हें अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय न्यायालय निदेशों के रूप में सम्मिलित कर सकता है । ये हैं – कि आवेदक पुलिस अधिकारी द्वारा परिप्रश्न करने के लिए, जब कभी अपेक्षित हो, स्वयं को उपलब्ध कराएगा; ऐसे आवेदक को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से मामले के तथ्यों से परिचित व्यक्ति को कोई प्रलोभन, धमकी या वचन नहीं दिया जाना चाहिए, जिससे कि ऐसे व्यक्ति को न्यायालय या किसी पुलिस अधिकारी को ऐसे तथ्यों का प्रकटीकरण करने से रोका जा सके; एक शर्त यह है कि उस व्यक्ति को न्यायालय की अनुज्ञा के बिना भारत छोड़ कर नहीं जाना चाहिए । न्यायालय द्वारा धारा 437(3) के अधीन इनके अलावा शर्तें भी, जो आवश्यक समझी जाएं, अधिरोपित की जा सकती हैं । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह न्यायालय शर्तें अधिरोपित करने की आवश्यकता के प्रति जागरूक था, जैसा कि उसके निर्णय के पैरा 13 से स्पष्ट होता है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि विधि में ऐसी कोई बात नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि जब कभी अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, उन शर्तों में से कोई अधिरोपित किए बिना अनुदत्त की जानी चाहिए । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यहां तक मत व्यक्त किया गया था कि ऐसे अशर्त आदेश धारा 438 के निबंधनों के ही स्पष्टत: प्रतिकूल होंगे । इस न्यायालय ने यह भी उल्लेख किया कि यद्यपि ये विवेकाधिकार के रूप में व्यक्त की गई हैं, जिसका अर्थ यह है कि न्यायालय उन शर्तों को अधिरोपित कर सकता है, शायद इस बात पर व्यवहारिकता के रूप में विचार किया गया था, न्यायालयों को ऐसी शर्तें अधिरोपित करनी चाहिएं । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय का सरोकार इसी बात से था और इसके विरुद्ध न्यायालयों को जिस बात के लिए सावधान किया, वह यह थी कि अर्थान्वयन और निर्वचन की प्रक्रिया द्वारा न्यायालयों को कानून में दी गई शर्तों जो उसमें मौजूद न हों, मौजूद होने का अर्थान्वयन करके बाध्य नहीं किया

जाना चाहिए ।

60. **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में जिस संदर्भ और प्रकृति पर विचार किया गया था, वह यह है कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय की पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय द्वारा इस विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए था जिसमें उसने सचेत किया था कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति का प्रयोग यदाकदा और आपवादिक मामलों में किया जाना चाहिए और यह कि धारा 437 में दी गई सभी शर्तें धारा 438 में होने का अर्थ लगाया जाना चाहिए । इसके अलावा, उच्च न्यायालय ने इस बात की अपेक्षा की थी कि आवेदक को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए एक विशेष मामला बनाना चाहिए; यह भी कहा गया था कि ऐसे मामलों में, जहां कहीं प्रतिप्रेषण (रिमांड) की ईप्सा की जाती है, या साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के निबंधनों के अनुसार अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री प्राप्त करने के लिए एक युक्तियुक्त मामला बनाया जा सकता है, वहां अग्रिम जमानत अनुदत्त नहीं की जानी चाहिए और यह कि अग्रिम जमानत मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराधों के संबंध में तब तक अनुदत्त नहीं की जा सकती है, जब तक न्यायालय का यह समाधान नहीं हो जाता कि आरोप मिथ्या या आधारहीन हैं । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने निर्वचन करने के पश्चात् ऐसे नियमों के अधिरोपण पर अप्रसन्नता व्यक्त की थी और निर्णय के अनुक्रम में यह अभिनिर्धारित किया कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति व्यापक है और यह कि विवेकाधिकार उस रीति में सीमित नहीं है, जिस रीति में उच्च न्यायालय ने सुझाया है । साथ-ही साथ, इस न्यायालय ने इस बात पर भी जोर दिया कि प्रस्तुत मामलों में जमानत अनुदत्त करते समय या अनुदत्त करने से इनकार करते समय विवेकाधिकार का प्रयोग विवेक का सम्यक् प्रयोग करके और न्यायसम्मत रीति में किया जाना चाहिए ।

61. धारा 437(3) के प्रति निर्देश करके धारा 438(2) के अधीन

शर्तें अधिरोपित करना, इस न्यायालय की राय में, प्राधिकारियों – जिनके अंतर्गत पुलिस और अन्य अन्वेषक अभिकरण भी हैं जिन्हें अपराधों और उन आवेदकों की संभाव्य सहापराधिता का अन्वेषण करना होता है जो ऐसी राहत की ईप्सा करते हैं, के लिए पर्याप्त रक्षोपाय हैं । प्रत्येक सरोकार अर्थात् अधिक गंभीर अपराधों का जोड़ा जाना; बड़ी संख्या में व्यक्तियों या शिकायत करने वालों की मौजूदगी; असहयोग की संभाव्यता अन्वेषण में या अन्वेषण के दौरान किए गए कथनों के अनुक्रम में वस्तुओं और अपराध में आलिप्त करने वाली वस्तुओं की बरामदगी करने के लिए अभियुक्त के कथन की आवश्यकता होने पर सहयोग न करना, पर विचार करने पर महत्वपूर्ण रूप से यह उल्लेखनीय है कि इनमें से प्रत्येक सरोकार एक शर्त के रूप में अनुध्यात है और <u>अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाले प्रत्येक आदेश में आवश्यक रूप से सम्मिलित किया जाता है ।</u> इनके अतिक्रमण या अभिकथित अतिक्रमण होने की दशा में, संबंधित प्राधिकारी उपचारहीन नहीं है; धारा 437(2) के साथ पठित धारा 438(2) का अवलंब लिया जा सकता है । इन शर्तों में से किसी का अतिक्रमण होने पर उसे गिरफ्तार करने का निदेश लागू हो जाएगा । गिरफ्तार करने की यह शक्ति या निदेश धारा 437(5) में उपबंधित है । तथापि,, इस उपबंध का सेशन न्यायालयों या उच्च न्यायालयों द्वारा अनुदत्त की गई नियमित जमानत के लिए या गिरफ्तार न करने के निदेशों अर्थात् धारा 438 के अधीन अग्रिम जमानत के आदेश के लिए कोई शाब्दिक उपयोजन नहीं है । दूसरी बात, धारा 439(2) में, जो व्यापक शब्दों में सूत्रबद्ध है, पर्याप्त रूप से उन परिस्थितियों को आच्छादित किया गया है, जब अभियुक्त अन्वेषण के दौरान सहयोग नहीं करता है या साक्षी (साक्षियों) को धमकी देता है, या अभित्रस्त करता है या अन्य साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने की कोशिश करता है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

62. यहां यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि धारा 438 के उपबंधों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे यह सुझाव मिलता हो कि संसद् का आशय

इसके प्रवर्तन को या तो समयावधि के संबंध में या उन अपराधों की प्रकृति के संबंध में निर्बंधित करना था, जिनकी बाबत आवेदक को जमानत के लिए इनकार किया जाना चाहिए, या कौन सी विशेष बातें लागू होंगी । इस संदर्भ में, यह स्मरण करना सुसंगत है कि न्यायालय कानून के स्पष्ट और शाब्दिक निर्वचन से निकलने वाली प्रकट या स्पष्ट असंगति के अभाव में किसी उपबंध में निर्बंधन या शर्तें अधिरोपित करने से बचेगा । (संदर्भ – **चन्द्रमोहन** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य**[1] वाला मामला) **भारतीय रिजर्व बैंक** बनाम **जनरल फाइनेंस एंड इंवेस्टमेंट कं. लि. और अन्य**[2] वाले मामले में इस पाठ और संदर्भ की सुसंगतता पर निम्नलिखित शब्दों में जोर दिया गया था :–

> "निर्वचन पाठ तथा संदर्भ पर आधारित होना चाहिए । ये निर्वचन के आधारस्तम्भ होते हैं । यह भी कहा जा सकता है कि यदि पाठ तंतु है तो संदर्भ उसको रंग प्रदान करता है । दोनों में से किसी की उपेक्षा नहीं की जा सकती । दोनों ही महत्वपूर्ण हैं । वही निर्वचन सर्वोत्तम होता है जो कि पाठ का निर्वचन उसके संदर्भ के अनुरूप करता है । किसी कानून का तभी सर्वोत्तम निर्वचन होता है जब हमें यह पता होता है कि इसको क्यों अधिनियमित किया गया था । यह जानकारी होने पर कानून को पहले पूर्ण रूप से पढ़ा जाना चाहिए और तब एक-एक धारा को, एक-एक खंड को, एक-एक वाक्यांश को तथा एक-एक शब्द को पढ़ा जाना चाहिए । यदि कानून को उसके अधिनियमन के संदर्भ में कानून बनाने वाले की दृष्टि से, उसके संदर्भ में, उसकी स्कीम के अनुसार पढ़ा जाए तो धारा, खंड, वाक्यांश तथा शब्दों के भिन्न-भाव होंगे तथा वे भिन्न दिखाई देंगे, उस स्थिति की बनिस्बत जब कानून को संदर्भ के बिना पढ़ा जाता है । अत: संपूर्ण अधिनियम को देखना चाहिए और यह पता लगाना चाहिए कि संपूर्ण अधिनियम की स्कीम में ठीक

---

[1] [1967] 1 एस. सी. आर. 77.

[2] [1987] 2 उम. नि. प. 855 = (1987) 1 एस. सी. सी. 424.

बैठने के लिए प्रत्येक धारा, प्रत्येक खंड, प्रत्येक वाक्यांश तथा प्रत्येक शब्द का क्या अर्थ है तथा वे क्या कहने के लिए रचे गए हैं । कानून के किसी भाग का तथा कानून के किसी शब्द का पृथक् रूप से अर्थान्वयन नहीं किया जा सकता । कानून का अर्थान्वयन इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे कि प्रत्येक शब्द का एक स्थान हो तथा प्रत्येक बात अपने-अपने स्थानों पर हो ।"

क्रमश: अगामी अंक में.....

गतांक से आगे.....

63. इसी प्रकार से, **प्रवर्तन निदेशालय** बनाम **दीपक महाजन**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने मैक्सवेल का कानूनों का निर्वचन, दसवां संस्करण (मेक्सवेल ऑन इंटरप्रिटेशन ऑफ स्टेच्यूट्स, टेंथ एडिसन) को इस आशय के लिए निर्दिष्ट किया था कि यदि सामान्य अर्थ और व्याकरणिक अर्थान्वयन से "अधिनियमिति के स्पष्ट प्रयोजन का खंडन होता है, या कुछ असुविधा या असंगति, कठिनाई या अन्याय होता है, जो उपधारणात्मक रूप से आशयित नहीं था, तो इसका ऐसा अर्थान्वयन किया जा सकता है, जिससे शब्दों का अर्थ उपांतरित होता हो.....।"

64. इस न्यायालय ने बहुत पहले **हरियाणा राज्य और अन्य** बनाम **संपूर्ण सिंह और अन्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया था कि यह किसी कल्पना के परे है कि कोई न्यायाधीश विधानमंडल के अनुमित आशय के द्वारा कानून में जो कुछ है, उससे अधिक जोड़ने का हकदार हो । कानून के अर्थान्वयन का मूलभूत सिद्धांत यह है कि किसी अधिनियमिति का सही और विधिक अर्थ अधिनियमिति में प्रयुक्त शब्दों के अर्थ पर किसी इन्द्रियगोचर प्रयोजन या उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए विचार करके व्युत्पन्न किया जाता है जिसमें वह रिष्टि और उसका उपचार सम्मिलित होता है, जिसके लिए अधिनियमिति का अधिनियमन किया गया है । अत: यह उल्लेख करना पर्याप्त है कि जब धारा 438– जिस रूप में यह आज विद्यमान है, [जो कि उस पाठ से सारभूत रूप से भिन्न नहीं है जब सिब्बिया वाला मामला विनिश्चित किया गया था, सिवाय उपधारा (4) के अंत:स्थापन के], अधिनियमित की गई थी, संसद् उन वस्तुपरक परिस्थितियों और विद्यमान तथ्यों से परिचित था, जिनके कारण उसे इस उपबंध को उस प्रकार की शर्तों के बिना पुर:स्थापित करने के लिए प्रेरित किया जिनको राज्य ने इस धारा के अधीन प्रत्येक आदेश में अंतर्भूत रूप से अधिरोपित करने की वकालत की है ।

65. **सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले के विनिश्चय से आरंभ होकर इसी पंक्ति के विनिश्चयों में इस न्यायालय द्वारा अन्वेषण और जांच के

---

[1] (1994) 3 एस. सी. सी. 440.

[2] (1975) 2 एस. सी. सी. 810.

प्रक्रमों तथा अपराध की प्रकृति और गंभीरता विषयक सरोकारों पर बल देते हुए किए गए संकुचित निर्वचन से न्यायालयों को अन्यथा उपलब्ध विस्तार और शक्ति तथा विवेकाधिकार को कम करने वाला नहीं समझना चाहिए । परिसीमाएं विहित करने में इस न्यायालय का जोखिम यह है कि वे ऐसे अनम्य नियम या आदेशपत्र बन जाते हैं जिनसे विचलन नहीं किया जा सकता । इसके बजाय, यह कहना अधिक सुरक्षित होगा कि जहां कहीं ऐसी परिस्थितियां और ऐसे तथ्य हैं जो अपराध की गंभीरता को इंगित करते हुए विचित्र कठिनाइयां या जटिलताएं प्रस्तुत करते हैं, वहां न्यायालय (जिसे धारा 438 के अधीन आवेदनों पर विचार करना है) आवश्यकतापूर्ण निर्बंधन–चाहे ये समय को लेकर हों अथवा अन्वेषण या जांच के प्रक्रम पर हों, अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र हैं । इन विचित्र शर्तों में से प्रत्येक शर्त ऐसे किसी मामले की प्रस्तुत की गई परिस्थितियों में अधिरोपित की जा सकती है जिसकी वे सुभिन्न या विशेष विशेषताएं हों । <u>किंतु वे शर्तें सभी मामलों में सदैव निरपवाद रूप से अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं ।</u> दूसरे शब्दों में, यदि यह न्यायालय अधिरोपित करने के लिए उन शर्तों की रचना करने लगा और धारा 438 में उनके होने का अर्थ लगाने लगा जो इस धारा में अभियुक्त रूप से उपबंधित नहीं की गई हैं, तो संकट यह होगा कि कई आवेदक, जो अनुतोष के लिए अन्यथा हकदार हो सकते थे, पूर्ण रूप से इससे वंचित हो जाएंगे । उदाहरण के लिए, अपराध या अपराधों के किसी प्रवर्ग जहां न्यायालयों को अनुतोष अनुदत्त नहीं करना चाहिए था, का ऐसा वर्गीकरण करने पर, जिसमें उनमें से कोई विशेष बर्ताव करने की अपेक्षा करता है, इसका यह अर्थ होगा कि अभियुक्त की भूमिका और दर्शित की गई सामग्री (चाहे पर्याप्त है या नहीं) पर ध्यान दिए बिना न्यायालय शक्तिहीन और अन्यथा कानून द्वारा दिए गए विवेकाधिकार के आयाम से वंचित हो जाएंगे ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया है)

66. जहां तक राज्य और संघ की ओर से अभिव्यक्त किए गए इस सरोकार का संबंध है कि अशर्त आदेशों (अर्थात् जो एक विशिष्ट समयावधि से असंबद्ध हैं) का परिणाम यह होगा कि अभियुक्त अन्वेषण अधिकारी या प्राधिकारी के साथ सहयोग नहीं करेगा, या ऐसी वस्तुओं

की बरामदगी में सहायता करने के लिए जो अभियुक्त को आलिप्त करती हों (और इसलिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रयुक्त की जा सके), अभियोजन पक्ष को कथन करने में आनाकानी करेगा, यह न्यायालय महसूस करता है कि ऐसे दृष्टिकोण अस्पष्ट हैं और स्पष्ट रूप से पूर्वकल्पित धारणाओं पर आधारित हैं । यदि अन्वेषण के अनुक्रम में अभियुक्त द्वारा सहयोग नहीं किया जाता है, तो न्यायालय की सहायता की ईप्सा करने का उपचार विद्यमान है । इसके अतिरिक्त, इस पहलू पर भी सिब्बिया वाले मामले में इससे स्थिति की परिकल्पना की गई थी; न्यायालय ने **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **देवमन उपाध्याय**[1] वाले मामले को उद्धृत किया था, जिसमें इस न्यायालय ने निम्नलिखित मत व्यक्त किया था :–

> "जब ऐसा व्यक्ति जो अभिरक्षा में नहीं है, किसी अपराध का अन्वेषण करने वाले पुलिस अधिकारी के पास पहुंचता है और उसे ऐसी जानकारी देने की प्रस्थापना करता है, जिसके परिणामस्वरूप आरोप से संबंधित कोई तथ्य प्रकट होता है, जो कि उसके विरुद्ध लगाया जाए, तो उसकी बाबत समुचित रूप से यह समझा जा सकता है कि उसने अपने आपको पुलिस के समक्ष अभ्यर्पित कर दिया है । इस नियम के विस्तृत आधार की बाबत यह बताया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 46 में किसी व्यक्ति की बाबत यह कहे जाने के पूर्व कि उसे अभिरक्षा में ले लिया गया है, कोई औपचारिकता अनुध्यात नहीं है : शब्दों या कार्यवाही द्वारा किसी व्यक्ति द्वारा अभिरक्षा के लिए समर्पित करना पर्याप्त है । कोई व्यक्ति जब प्रत्यक्ष रूप से मुख से बोले गए शब्दों द्वारा किसी पुलिस अधिकारी को ऐसी जानकारी देता है जो उसके विरुद्ध साक्ष्य के रूप में प्रयुक्त की जा सकती है, तो उसे भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अर्थांतर्गत पुलिस अधिकारी की 'अभिरक्षा' में स्वयं को प्रस्तुत किया समझा जाएगा : लीगल रिमेम्बरेंसर **बनाम** ललित मोहन सिंह [(1921) आई. एल. आर. 49 कलकत्ता 167], संतोखी बेलदार **बनाम** किंग एम्परर [(1933) आई. एल. आर. पटना 241] । ऐसे आपवादिक मामलों की निश्चित रूप

---

[1] [1961] 1 एस. सी. आर. 14.

से कल्पना की जा सकती है, जिनमें कोई व्यक्ति उस पुलिस अधिकारी के समक्ष स्वयं को उपस्थित किए बिना जानकारी दे सकता है, जो अपराध का अन्वेषण कर रहा है । उदाहरण के लिए, वह पुलिस अधिकारी को पत्र लिख सकता है और ऐसी जानकारी दे सकता है या दूरभाष पर या अन्य संदेश द्वारा जानकारी भेज सकता है ।"

वल्लभदास लीलाधर बनाम **सहायक सीमा-शुल्क कलक्टर**[1] वाले मामले में इस मत को दोहराया गया था और लागू किया गया था । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां सुसंगत हैं और संदर्भ की सुविधा के लिए पुन: उद्धृत की जाती हैं :–

"ऐसी शर्तों में से एक शर्त यह भी हो सकती है कि पुलिस द्वारा यह मामला बनाए जाने की स्थिति में कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन प्रकटीकरण संभाव्य है, तो जमानत पर छोड़ा गया व्यक्ति प्रकटीकरण को सुविधाजनक बनाने के लिए पुलिस की अभिरक्षा में रखे जाने का दायित्वाधीन होगा । इसके अलावा, यदि और जब अवसर आता है, अभियोजन पक्ष के लिए यह संभव हो सकता है कि वह जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** देवमन उपाध्याय {[1961] 1 एस. सी. आर. 14} वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा बताए गए सिद्धांत का आश्रय लेकर तथ्यों के प्रकटीकरण के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के फायदे का दावा कर सकता है ।"

अत: किसी ऐसी वस्तु की बरामदगी या किसी तथ्य के प्रकटीकरण की स्थिति में, जो ऐसी स्थिति के दौरान किए गए कथन से संबंधित है, धारा 27 के उपबंधों को पूरा करने के प्रयोजनार्थ अन्वेषण करने वाले प्राधिकारी की अपेक्षाओं को सुविधाजनक बनाने के लिए "सीमित अभिरक्षा" या "समझी गई अभिरक्षा" पर्याप्त होगी । ऐसी स्थिति में अभियुक्त को अलग से अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए कहने का कोई प्रश्न (या आवश्यकता) नहीं है ।

---

[1] (1965) 3 एस. सी. आर. 854.

67. अब कुछ विनिश्चयों में दिए गए इन अनुदेशों पर विचार करते हैं कि अग्रिम जमानत यह समाधान होने पर कि अभियुक्त अंतर्वलित नहीं है, कठोर शर्तों के साथ नहीं दी जानी चाहिए या अनुदत्त नहीं की जानी चाहिए, सिब्बिया वाले मामले में ऐसे निर्बंधनों को अधिरोपित करने का या कतिपय अपराधों में इससे इनकार करने या सावधानी या विशेष दृष्टिकोण अपनाने का स्पष्ट रूप से अननुमोदन किया गया था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि :–

> "उच्च न्यायालय द्वारा निर्मित आठ-सूची संहिता में जो नियम हैं, उनमें से कुछ पर बारीकी के साथ देखने से यह पता चलेगा कि व्यवहार में उन्हें लागू करना कितना कठिन है । सातवें प्रतिपादना में यह कहा गया है –
>
> > 'यह जनता और राज्य के व्यापक हित में है कि आर्थिक अपराधों जैसे गम्भीर मामलों में जिनमें कार्यपालक और राजनीतिक शक्ति के उच्च स्तर पर अत्यधिक भ्रष्टाचार अन्तर्ग्रस्त हो, संहिता की धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए ।'
>
> यदि न्यायालय के पास ज्ञान-चक्षु हो, तो भी वह अग्रिम जमानत के प्रक्रम में ही भ्रष्टाचार की स्पष्टता का जायजा किस प्रकार ले सकता है ? और क्या यह कहना सही होगा कि अभियोग की स्पष्टता जमानत अस्वीकृत करने के लिए तब भी पर्याप्त होगी, भले ही अपीलार्थी के आचरण के बारे में स्पष्ट रूप से यह क्यों न दर्शित किया जाए कि वह सही है ? उच्च न्यायालय द्वारा विरचित आठवें प्रतिपादन में यह कहा गया है –
>
> > 'याचिका में असद्भाव संबंधी साधारण अभिकथन मात्र अपर्याप्त होते हैं । न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर उसका यह समाधान अवश्य ही हो जाना चाहिए कि असद्भाव से संबंधित अभिकथन सारवान् है और अभियोग मिथ्या तथा निराधार प्रतीत होता है ।'
>
> क्या इस नियम से यह अभिप्रेत है और विद्वान् अपर सालिसिटर जनरल की दलील भी यही है कि अग्रिम जमानत तब

तक अनुदत्त नहीं की जा सकती है, जब तक कि यह अभिकथित न किया जाए (और स्वभावत: यह भी दर्शित न कर दिया जाए, क्योंकि मात्र अभिकथन कभी भी पर्याप्त नहीं होता है) कि प्रस्थापित अभियोग असद्भावपूर्ण है ? यह बात समझ में आने वाली है कि यदि असद्भाव मौजूद होने की बात दर्शित कर दी जाए, तो अधिकांश मामलों में अग्रिम जमानत अनुदत्त की जानी चाहिए । किंतु यह समझना सरल नहीं है कि अग्रिम जमानत के लिए किए गए आवेदन को तब तक क्यों अस्वीकृत किया जाना चाहिए जब तक कि अभियोग की बाबत यह दर्शित न कर दिया जाए कि वह असद्भावपूर्ण है । वस्तुत: न्यायिक अर्थान्वयन द्वारा नियम विरचित करने में यही जोखिम अंतर्वलित है । अत: विवेकाधिकार के क्षेत्र में विवेकाधिकार को बने रहने दिया जाना चाहिए, जिसका प्रयोग वस्तुपरक रूप से किया जाना चाहिए और जिसे उच्च न्यायालय को सही करने का अधिकार होना चाहिए । वैवेकिक शक्ति की सुरक्षा इस दोहरी संरक्षा में है जिसमें उसके दुरुपयोग के विरुद्ध रक्षोपाय मौजूद हैं ।

उच्च न्यायालय द्वारा विरचित छठे प्रतिपादन के अनुसार, धारा 438 के अधीन विवेकाधिकार का प्रयोग उन अपराधों के संबंध में जो कि मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय हों, तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि उस प्रक्रम में न्यायालय का यह समाधान न हो गया हो कि ऐसा आरोप मिथ्या या निराधार प्रतीत होता है । धारा 438 उच्च न्यायालय और सेशन न्यायालय को अग्रिम जमानत अनुदत्त करने की शक्ति उस दशा में प्रदत्त करती है, यदि आवेदक के पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसे 'अजमानतीय अपराध' के लिए जाने के अभियोग के आधार पर गिरफ्तार किया जा सकता है । इस संबंध में उन शर्तों के मौजूद होने संबंधी अर्थान्वयन के लिए हमें कोई भी औचित्य दिखाई नहीं पड़ता है, जिनके अध्यधीन रहते हुए संहिता की धारा 437(1) के अधीन जमानत अनुदत्त की जा सकती है । अजमानतीय अपराधों के संबंध में जमानत अनुदत्त करने की शक्ति प्रदत्त करते हुए उस धारा में अपवाद के तौर पर यह उपबंध किया गया है कि ऐसा

व्यक्ति जिस पर अजमानतीय अपराध का अभियोग है या जिस पर यह संदेह है कि उसने अजमानतीय अपराध किया है, उस देश में 'ऐसे न छोड़ा जाएगा' यदि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत होता है कि वह मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडनीय अपराध का दोषी है । यदि यह आशय था कि धारा 437(1) में अंतर्विष्ट अपराध धारा 438(1) के अधीन दिए जाने वाले अनुतोष के अनुदान को लागू होना चाहिए, तो पश्चात्कथित धारा में समरूप उपबंध के पुर:स्थापित करने की अपेक्षा विधान-मंडल के लिए और अधिक सरल बात कोई न होती । हमने उन दोनों धाराओं के बीच के आधारिक प्रभेद के बारे में पहले ही बता दिया है । धारा 437 ऐसे व्यक्ति को केवल तभी लागू होती है, जबकि ऐसे व्यक्ति को जिसकी बाबत यह अभिकथित किया गया है कि उसने अजमानतीय अपराध किया है, वांरट के बिना गिरफ्तार किया जाता है या निरुद्ध किया जाता है या वह न्यायालय के समक्ष हाजिर होता है या लाया जाता है, धारा 438 गिरफ्तारी की जाने के पहले लागू होता है और वास्तव में उसे लागू होने की पूर्व शर्तों में से एक शर्त यह है कि ऐसे व्यक्ति को, जो कि उसके अधीन अनुतोष प्राप्त करने के लिए आवेदन करता है, यह दर्शित करने में समर्थ होना चाहिए कि उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि 'उसे गिरफ्तार किया जा सकता है' जिससे स्पष्ट रूप से यह अभिप्रेत है कि उसे अभी तक गिरफ्तार नहीं किया गया है । जमानत के अनुदत्त किए जाने से या इनकार किए जाने से इस प्रभेद का जो संबंध है, वह यह है कि धारा 437 के अधीन आने वाले मामलों में कुछ ऐसा आंकड़ा मौजूद है, जिसके आधार पर यह दर्शित करना संभव है कि यह विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त आधार प्रतीत होते हैं कि आवेदक मृत्यु या आजीवन कारावास से दंडित अपराध का दोषी है । धारा 438 के अधीन आने वाले मामलों में यह प्रक्रम अभी आना शेष है और उसके अधीन अधिकांश मामलों में यह कहना समय से पूर्व और वास्तव में कठिन है कि ऐसा विश्वास करने के लिए युक्तियुक्त कारण हैं या नहीं हैं । धारा 437(1) में जिस विश्वास के आधार के बारे में

बताया गया है, जिसके कारण न्यायालय आवेदक को जमानत पर नहीं छोड़ सकता है, वह प्रसामान्यत: प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभिकथित अभिकथनों की विश्वसनीयता है ।"

68. उपरोक्त कारणों से, इस पीठ को किए गए निर्देश में प्रथम प्रश्न का उत्तर यह है कि धारा 438(4) में वर्णित अपराधों के सिवाय, स्वत: ऐसा कोई अपराध नहीं है जो धारा 438 के क्षेत्र से अपवर्जित हो जाता हो । दूसरे शब्दों में, अग्रिम जमानत, सभी परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, सभी अपराधों के संबंध में अनुदत्त की जा सकती है । साथ ही साथ, यदि किसी विशेष विधि या कानून में ऐसे निर्देशन हैं, जो धारा 438(1) के अधीन राहत को अपवर्जित करते हैं, तो उन पर सम्यक् रूप से विचार किया जाएगा । साथ ही, क्या किसी प्रस्तुत मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में जहां गंभीर प्रकृति के अपराधों के कारित करने के संबंध में अभिकथन किए गए हैं, कतिपय विशेष शर्तों के साथ अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाए या नहीं, यह एक विवेकाधिकार का विषय है, जिसका प्रयोग अपराधों की प्रकृति, दर्शित किए गए तथ्यों, आवेदक की पृष्ठभूमि, उसके न्याय से भागने (या न भागने) की संभावना; अन्वेषक अभिकरण या पुलिस के साथ सहयोग करने या सहयोग न करने की संभावना आदि को ध्यान में रखते हुए किया जाना चाहिए । ऐसी कोई अनम्य समय-सीमा नहीं हो सकती है, जिसके लिए अग्रिम जमानत का आदेश जारी रह सकता है ।

69. अत: यह न्यायालय यह अभिनिर्धारित करता है कि **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख, के. एल. वर्मा, निर्मलजीत कौर, सतपाल सिंह, अदरी धरनदास, एचडीएफसी बैंक, जे. जे. मेनन** और **नरेश कुमार यादव** (उपर्युक्त) वाले मामलों में सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय के बारे में अभिव्यक्त यह मत कि वे एक सीमित अवधि के लिए अग्रिम जमानत अनुदत्त करने, या अन्वेषण के अनुक्रम की प्रतीक्षा करने के लिए आबद्ध हैं, जिससे "सामान्य न्यायालय" की उपेक्षा न की जा सके या कतिपय प्रकार के गंभीर अपराधों, जिनमें आर्थिक अपराध भी हैं, आदि में प्रसामान्यत: अग्रिम जमानत अनुदत्त नहीं की जानी चाहिए, उचित विधि नहीं हैं । उन मताभिव्यक्तियों को, जिनसे यह उपदर्शित

होता है कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय अमुक समय से संबंधित या अन्वेषणकारी घटना से संबंधित आवश्यक रूप से अधिरोपित की जानी चाहिएं, उलटा जाता है । इसी प्रकार, महत्रे वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां कि "न्यायालयों को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 की परिधि और व्याप्ति पर ऐसे निर्बंधन अधिरोपित नहीं करने चाहिएं, जो विधान-मंडल द्वारा अनुध्यात नहीं किए गए हैं; न्यायालय कानून के उपबंध को इसका निर्वचन करने की आड़ लेकन पुन: नहीं लिख सकता है," अति व्यापक हैं और उचित विधि नहीं समझा जा सकता है । यह कहना एक बात है कि विधि की दृष्टि से, सामान्यत: विशेष शर्तें [जो धारा 437(3) के साथ पठित धारा 438(2) में वर्णित नहीं हैं] अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं; यह कहना पूर्ण रूप से अलग बात है कि विशिष्ट दृष्टांतों में, अपराध की प्रकृति, अभियुक्त की भूमिका, या कुछ विचित्र विशेषता को ध्यान में रखते हुए विशेष शर्तें अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में निर्णय स्वत: यह एक नज़ीर है कि ऐसी शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं, किंतु नैमितिक या सामान्य रीति में नहीं और यह कि ऐसी शर्तें इसके पश्चात् एक अनम्य "सिद्धांत" बन जाती हैं जिनका न्यायालयों को अनुसरण करना होगा । अत: न्यायालय अपराध को, विचित्र तथ्यों, अपराधी की भूमिका, उससे संबंधित परिस्थितियों, उसके द्वारा न्याय (या ऋजु अन्वेषण) को बिगाड़ने की संभावना, न्याय से बचने या भागने की संभावना को ध्यान में रखते हुए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग विशेष शर्तें अधिरोपित करने के लिए कर सकते हैं । ऐसी शर्तें मामला-दर-मामला के आधार पर तथा धारा 438 के अधीन आवेदन अभिग्रहण करने वाले न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करने पर अधिरोपित की जानी चाहिएं । निष्कर्षत:, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि ऐसी शर्तें अधिरोपित करना जो जमानत अनुदत्त करते समय धारा 437(2) में उल्लिखित हैं, सामान्य हैं; समान रूप से, पुलिस द्वारा यह मामला बनाने की दशा में कि साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के अधीन किसी प्रकटीकरण होने की संभाव्यता है, जमानत पर छोड़ा गया व्यक्ति प्रकटीकरण को सुकर बनाने के लिए पुलिस अभिरक्षा में लिए जाने का

दायी होगा । अन्य शर्तें, जो निर्बंधनकारी हैं, आज्ञापक नहीं हैं; न ही कोई अत्यावश्यक नियम है कि वे आवश्यक रूप से अधिरोपित की जानी चाहिएं या यह कि अग्रिम जमानत का आदेश एक समयावधि के लिए होगा, या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने तक या दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 के अधीन कोई कथन अभिलिखित करने आदि तक विधिमान्य होगा । अन्य शर्तें अधिरोपित की जा सकती हैं, यदि मामले के तथ्यों में ऐसा करना आवश्यक हो ।

प्रश्न सं. 2 : क्या अग्रिम जमानत की कालावधि उस समय और प्रक्रम पर समाप्त हो जानी चाहिए जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा समन किया जाता है ?

70. यहां प्रश्न यह है कि क्या विधि में कोई ऐसा उपबंध है जिसमें स्वयमेव यह अपेक्षित हो कि आरोप पत्र के फाइल होने या न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन करने (या यहां तक कि आरोप पत्र में उस अपराध के परिवर्धन पर जिसके लिए जमानत पर आवेदक नए सिरे से अभियुक्त है) के उपरांत उसकी स्वाधीनता समपहृत हो जानी चाहिए और यह कि उसे अभ्यर्पण करने तथा नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए कहना चाहिए । धारा 438 के अधीन शक्ति के विस्तार और आयाम के बारे में प्रथम प्रश्न के उत्तर में की गई मताभिव्यक्तियां यहां भी समान रूप से सुसंगत हैं । वर्तमान संदर्भ में, इसके अतिरिक्त, धारा 167(2) का निर्वचन करते हुए इस न्यायालय का निर्णय और मताभिव्यक्तियां उपयोगी हैं । **गुरचरण सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि अभियुक्त को धारा 167(2) के अधीन जमानत अनुदत्त करके छोड़ा जाना "समझी गई जमानत" की कोटि के अंतर्गत आता है । यह बात धारा 167(2) से सिद्ध होती है जिसमें यह कहा गया है कि किसी व्यक्ति को इसके उपबंध के अधीन जमानत पर छोड़ा जाना अध्याय 33 के उपबंधों के अधीन उस अध्याय के प्रयोजनों के लिए इस प्रकार छोड़ा गया समझा जाएगा । **असलम बाबालाल देसाई** (उपर्युक्त) वाले मामले के निर्णय में यह स्पष्ट किया गया है कि जब किसी अभियुक्त को धारा 167(2) के प्रवर्तन द्वारा छोड़ा जाता है और बाद में आरोप पत्र फाइल किया जाता है, उसकी

जमानत को रद्द करने का कोई प्रश्न ही नहीं है । इन परिस्थितियों में, अभियुक्त को एक प्रक्रम पर धारा 438 के अधीन राहत दी जाती है तो इस तथ्य मात्र से यह अर्थ नहीं निकलता है कि आरोप पत्र फाइल होने के उपरांत उसे आवश्यक रूप से अभ्यर्पण या/और नियमित जमानत के लिए आवेदन करना होगा । धारा 167(2) के अधीन 'समझी गई जमानत' की अग्रिम जमानत के साथ अनुरूपता इस न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने के लिए प्रेरित करती है कि बाद में आरोप पत्र फाइल होने की मात्र घटना अभियुक्त को अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए बाध्य नहीं कर सकती है । वस्तुतः, दिलचस्प रूप से, वास्तव में, यदि वहां आरोप पत्र फाइल किया जाता है जहां अभियुक्त अग्रिम जमानत पर है, तो स्वाभाविक उलझन यह होगी कि अन्वेषक अभिकरण या पुलिस के पास उसकी अभिरक्षा की अपेक्षा करने का कोई अवसर नहीं था, क्योंकि उसके व्यवहार से ऐसा कदम उठाने की अपेक्षा करने वाली कोई बात नहीं रही थी । दूसरे शब्दों में, अभियुक्त, जिसे अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, तब भी स्वछंद बना रहेगा, जब आरोप पत्र फाइल किया जाता है, इसकी स्वाभाविक उलझन यह है कि न्यायालय के पास यह निदेश देने का कोई अवसर नहीं आता है कि उसे गिरफ्तार किया जाए और यह भी कि उसने अन्वेषण में सहयोग नहीं किया था । तथापि, साथ ही साथ, अन्वेषण के दौरान किसी समय पर यदि धारा 438(2) के साथ पठित धारा 437(3) के अधीन अधिरोपित शर्तों में से किसी शर्त का उल्लंघन करने या मामले के प्रस्तुत तथ्यों में अधिरोपित किसी अन्य शर्त का अतिक्रमण करने के लिए न्यायालय के मध्यक्षेप के लिए कोई अवसर उद्भूत होता है, तो सदैव धारा 439(2) के अधीन आश्रय लिया जा सकता है ।

71. धारा 438(3) में यह उपबंधित है कि जब किसी व्यक्ति को अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाती है, यदि बाद में ऐसे व्यक्ति को "ऐसे अभियोग के आधार पर" पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी द्वारा वारंट के बिना गिरफ्तार किया जाता है और वह जमानत देने के लिए इच्छुक है, "तो उसे जमानत पर छोड़ दिया जाएगा तथा यदि ऐसे अपराध का संज्ञान लेने वाला मजिस्ट्रेट यह विनिश्चित करता है कि उस व्यक्ति के विरुद्ध प्रथम बार ही वारंट जारी किया जाना चाहिए, तो वह

उपधारा (1) के अधीन न्यायालय के निदेश के अनुरूप जमानतीय वारंट जारी करेगा" । अग्रिम जमानत अनुदत्त करने वाला आदेश भी – जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, और कई पूर्ववर्ती विनिश्चयों में भी उल्लेख किया गया है, इस धारा 438 के अधीन एक "निदेश" होता है 'कि ऐसी गिरफ्तारी की दशा में' आवेदक को जमानत पर छोड़ दिया जाए । अत: जब किसी अभियुक्त को वास्तव में जमानत अनुदत्त की जाती है और धारा 438(2) में दी गई शर्तें उसे गिरफ्तारी की दशा में "छोड़ देने" के निदेश के भाग के रूप में सम्मिलित की जाती हैं, तो सभी आवश्यक शर्तें जिनका वह पालन करने के लिए आबद्ध है, विद्यमान हैं । धारा 438(3) में ऐसे व्यक्ति की गिरफ्तारी की दशा में उठाए जाने वाले कदमों को रेखांकित किया गया है, जिसे धारा 438(1) के अधीन राहत अनुदत्त की गई है । न्यायालय द्वारा अधिरोपित किसी या सभी शर्तों के अननुपालन की दशा में, संबंधित अभिकरण या पुलिस धारा 439(2) के अधीन न्यायालय से निदेश प्राप्त करने की ईप्सा कर सकते हैं ।

72. यह मत कि इस न्यायालय ने अभियुक्त की गिरफ्तारी के लिए निदेश लेने के लिए आवेदन करने के अभियोजन पक्ष के विकल्प के बारे में मत व्यक्त किया है, इसका समर्थन **प्रदीप राम** (उपर्युक्त) वाले मामले से होता है जहां इस न्यायालय ने निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "21. धारा 437(5) और 439(2) दोनों, न्यायालय को अभियुक्त, जिसे अध्याय 32 के अधीन जमानत पर छोड़ा गया है, को गिरफ्तार करने और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने के लिए सशक्त करती हैं । धारा 437(5) और धारा 439(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए अनेक आधार हो सकते हैं । जमानत को रद्द करने के लिए सिद्धांत और आधार सुस्थिर हैं, किंतु वर्तमान मामले में हमारा सरोकार मामले के केवल एक पहलू से है अर्थात् ऐसे मामले से है, जहां अभियुक्त को जमानत अनुदत्त किए जाने के पश्चात् मामले में नए और गंभीर अपराध जोड़े जाते हैं । कोई व्यक्ति जिसके विरुद्ध गंभीर अपराध जोड़े गए हैं और वह पहले से ही जमानत पर हैं, उसे न्यायालय द्वारा धारा 437(5) और धारा 439(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए गिरफ्तार

और अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किए जाने का भली-भांति निदेश दिया जा सकता है । किसी अभियुक्त को अनुदत्त की गई जमानत को रद्द करना और उसे गिरफ्तार करने तथा अभिरक्षा में लेने का निदेश देना कार्रवाई का एक अनुक्रम हो सकता है जिसे धारा 437(5) और 439(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते समय अपनाया जा सकता है, किंतु ऐसे मामले हो सकते हैं जहां अभियुक्त को अनुदत्त की गई जमानत को रद्द किए बिना न्यायालय सुसंगत बातों के आधार पर अभियुक्त को गिरफ्तार और अभिरक्षा में सुपुर्द किए जाने का निदेश दे सकता है । गंभीर अपराधों का जोड़ा जाना ऐसी परिस्थितियों में एक परिस्थिति है, जिसके अधीन न्यायालय अभियुक्त को, उन अपराधों के संबंध में जमानत दिए जाने के बावजूद जिनके लिए उसे उस समय पर आरोपित किया गया था जब जमानत पर विचार किया गया था और जमानत अनुदत्त की गई थी, गिरफ्तार और अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किए जाने का निदेश दे सकता है ।

* * * *

25. हमें पुन: दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(5) और 439(2) के उपबंधों पर विचार करना होगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 की उपधारा (5) में यह अभिव्यक्ति प्रयोग की गई है 'यदि न्यायालय ऐसा करना आवश्यक समझता है, तो यह निदेश देगा कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किया जाए' । पूर्वोक्त उपबंधों के पढ़ने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि उपबंध में आज्ञापक रूप से यह उपबंधित नहीं है कि न्यायालय को ऐसे अभियुक्त की गिरफ्तारी का निदेश देने से पूर्व जिसे पहले ही जमानत अनुदत्त की गई है, उसकी पूर्ववर्ती जमानत को अवश्य ही रद्द करना आवश्यक है । न्यायालय को विवेकाधिकार दिया गया है कि ऐसे आदेश पारित करे और निदेश दे कि ऐसे व्यक्ति को गिरफ्तार किया जाए और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द किया जाए और वह निदेश अधिक गंभीर और असंज्ञेय अपराधों के जुड़ने के कारण ऐसे अभियुक्त की पूर्ववर्ती जमानत को रद्द करने के आदेश के साथ या उसे गिरफ्तार करने की अनुज्ञा

सहित हो सकता है । **मिठाभाई पाशाभाई पटेल** (उपर्युक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय में के पैरा 18 में 'मामूली तौर से' शब्द प्रयुक्त किया गया है जिसे इस रूप में नहीं पढ़ा जा सकता है कि अभियुक्त को पहले ही अनुदत्त की गई जमानत को अधिक गंभीर और असंज्ञेय अपराधों के जुड़ने के कारण उसे अन्वेषक अधिकारी द्वारा गिरफ्तार किए जाने से पूर्व आज्ञापक रूप से रद्द किया जाना चाहिए ।

* * * *

27. उपर्युक्त आदेश का अवलंब लेते हुए, अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि प्रत्यर्थी-राज्य को अपीलार्थी को अभिरक्षा में लेने की ईप्सा करने से पूर्व अपीलार्थी को जमानत अनुदत्त करने वाले तारीख 10 मार्च, 2016 के आदेश को पहले रद्द करवाना चाहिए था । यह सही हो सकता है कि ऐसे किसी दांडिक मामले में, जिसमें अभियुक्त को जमानत दी गई है, किसी अपराध के जुड़ने मात्र से अन्वेषक प्राधिकारी स्वत: अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकते हैं और उस न्यायालय से आदेश अभिप्राप्त करने की आवश्यकता है, जिसने अभियुक्त को जमानत पर छोड़ा था । अभियुक्त, जो पहले से जमानत पर है, वह नए जोड़े गए अपराधों के संबंध में जमानत के लिए आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है और न्यायालय विवेक का प्रयोग करने के पश्चात् नए अपराधों के संबंध में या तो जमानत देने से इनकार कर सकता है या जमानत अनुदत्त कर सकता है । किसी मामले में, नए जोड़े गए अपराधों के लिए अभियुक्त के जमानत के लिए आवेदन को नामंजूर कर दिया जाता है, तो अभियुक्त को भली-भांति गिरफ्तार किया जा सकता है । सभी मामलों में, जहां अभियुक्त को न्यायालय के आदेशों से जमानत दी गई है और गंभीर प्रकृति के अपराधों सहित नए अपराध जोड़े जाते हैं, तो यह आवश्यक नहीं है कि सभी मामलों में नए अपराधों के आधार पर अभियुक्त को गिरफ्तार करने की अनुज्ञा प्रदान करने से पूर्व न्यायालय द्वारा दी गई पूर्ववर्ती जमानत को रद्द किया जाना चाहिए । न्यायालय को धारा 437(5) और 439(2) के अधीन

विधान-मंडल द्वारा दी गई शक्ति व्यापक शक्तियां हैं जिनके अधीन न्यायालय अभियुक्त को पूर्ववर्ती अपराधों के संबंध में जमानत को रद्द किए बिना भी गिरफ्तार किए जाने और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने की अनुज्ञा दे सकता है । धारा 437(5) और 439(2) का इस निर्बंधित रीति में अर्थ नहीं लगाया जा सकता है कि अभियुक्त को गिरफ्तार करने और उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने के लिए आदेश न्यायालय द्वारा केवल पूर्ववर्ती जमानत को रद्द करने के पश्चात् पारित किया जा सकता है ।

28. प्रस्तुत मामले में वापस आते हैं । अपीलार्थी एक अन्य मामले के संबंध में पहले से कारागार की अभिरक्षा में था और अन्वेषक अभिकरण ने न्यायालय के समक्ष अभियुक्त को पेश करने के लिए पेशगी वारंट प्रदान करने के लिए विशेष न्यायाधीश, राष्ट्रीय अन्वेषक अभिकरण न्यायालय के समक्ष आवेदन किया । विशेष न्यायाधीश द्वारा पेशगी वारंट प्रदान करने की प्रार्थना को स्वीकार करने के पश्चात् अभियुक्त को तारीख 26 जून, 2018 को न्यायालय के समक्ष पेश किया गया और अभिरक्षा में प्रतिप्रेषित किया गया । इस प्रकार, प्रस्तुत मामले में, अभियुक्त को न्यायालय की अनुज्ञा से पेश किया गया था । अतः, प्रस्तुत मामला ऐसा मामला नहीं है जहां अन्वेषक अभिकरण ने अपीलार्थी को नए अपराधों के जुड़ने के पश्चात् स्वतः अभिरक्षा में लिया हो, बल्कि अन्वेषक अभिकरण द्वारा न्यायालय से अभिप्राप्त किए गए पेशगी वारंट के अनुसरण में अभियुक्त को न्यायालय में पेश किया गया था । इस प्रकार, हम उस प्रक्रिया में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं जो विशेष न्यायाधीश, राष्ट्रीय अन्वेषक अभिकरण न्यायालय द्वारा अपीलार्थी को न्यायालय के समक्ष पेश करने के संबंध में अपनाई गई थी । प्रस्तुत मामले के तथ्यों में, विशेष न्यायाधीश के लिए अभियुक्त-अपीलार्थी को उसके समक्ष पेश किए जाने या उसे न्यायिक अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने की अनुज्ञा देने से पूर्व तारीख 10 मार्च, 2016 को अपीलार्थी को अनुदत्त की गई जमानत को रद्द करने का आदेश पारित करना आवश्यक नहीं था ।

29. पूर्वगामी चर्चाओं को ध्यान में रखते हुए, हम ऐसी परिस्थिति के संबंध में, जहां अभियुक्त को जमानत अनुदत्त करने के पश्चात् अतिरिक्त संज्ञेय और अजमानतीय अपराध जोड़े जाते हैं, निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुंचे हैं :–

(i) अभियुक्त अभ्यर्पण कर सकता है और नए जोड़े गए संज्ञेय और अजमानतीय अपराधों के लिए जमानत हेतु आवेदन कर सकता है । जमानत से इनकार करने की स्थिति में, अभियुक्त को निश्चित रूप से गिरफ्तार किया जा सकता है ।

(ii) अन्वेषक अभिकरण अभियुक्त की गिरफ्तारी और उसकी अभिरक्षा के लिए धारा 437(5) और 439(2) के अधीन न्यायालय से आदेश की ईप्सा कर सकता है ।

(iii) न्यायालय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(5) और 439(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए उस अभियुक्त को, जिसे पहले ही जमानत दी गई है, उसकी जमानत को रद्द करने के पश्चात् अभिरक्षा में लेने के लिए निदेश दे सकता है । न्यायालय धारा 437(5) और 439(2) के अधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए उस व्यक्ति को, जिसे पहले ही जमानत अनुदत्त की गई है, अधिक गंभीर और असंज्ञेय अपराधों के जुड़ने पर गिरफ्तार किए जाने या उसे अभिरक्षा के लिए सुपुर्द करने का निदेश दे सकता है और इसके लिए सदैव पूर्ववर्ती जमानत को रद्द करने के आदेश के साथ ऐसा निदेश करना आवश्यक नहीं हो सकेगा ।

(iv) ऐसे मामले में जहां अभियुक्त को पहले ही जमानत अनुदत्त की गई है, अन्वेषक अभिकरण अपराध या अपराधों के जुड़ने पर अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए अग्रसर नहीं हो सकेगा, अपितु ऐसे अपराध या अपराधों के जुड़ने पर अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए उसको अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए उस न्यायालय से आदेश अभिप्राप्त करने की आवश्यकता है जिसने जमानत अनुदत्त की थी ।"

73. पूर्व में, **दौलत राम** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में संप्रकाशित विनिश्चय में इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया था कि :–

> "एक बार अनुदत्त की गई जमानत इस बात पर विचार किए बिना कि क्या किन्हीं आकस्मिक परिस्थितियों के कारण जमानत ऋजु विचारण के लिए सहायक नहीं रह गई है जिससे अभियुक्त को विचारण के दौरान जमानत की रियायत का उपभोग करते हुए अपनी स्वाधीनता को प्रतिधारित करने की अनुज्ञा दी जा सके, यंत्रवत रीति में रद्द नहीं की जानी चाहिए ।"

74. **हज़ारी लाल दास** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य और एक अन्य**[2] वाले मामले में इस विनिश्चय का अनुसरण किया गया था और इसके विनिश्चयाधार को लागू किया गया था । **भदरेश बिपिनभाई सेठ** बनाम **गुजरात राज्य और एक अन्य**[3] वाले मामले के विनिश्चय में **महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले में के सिद्धांतों को निकृष्ट करने के पश्चात् यह मत व्यक्त किया गया :–

> "25.6 यह एक स्थिर विधिक स्थिति है कि जो न्यायालय जमानत अनुदत्त करता है उसे इसे रद्द करने की भी शक्ति है । जमानत अनुदत्त करने या रद्द करने के विवेकाधिकार का प्रयोग या तो अभियुक्त की प्रेरणा पर या लोक अभियोजक या शिकायतकर्ता की प्रेरणा पर किसी सुसंगत समय पर नई सामग्री या परिस्थिति के पाए जाने पर किया जाना चाहिए ।
>
> 25.7 सेशन न्यायालय या उच्च न्यायालय के आदेश के अनुसरण में जब एक बार विचारण न्यायालय द्वारा अभियुक्त को अग्रिम जमानत पर छोड़ दिया जाता है, तब अभियुक्त को विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करने और पुन: नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए बाध्य करना अयुक्तियुक्त होगा ।
>
> 25.8 न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग सभी

---

[1] (1995) 1 एस. सी. सी. 349.

[2] (2009) 10 एस. सी. सी. 652.

[3] (2016) 1 एस. सी. सी. 152.

मामलों में तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए सावधानी और सतर्कतापूर्वक किया जाना चाहिए जिससे शक्ति के प्रयोग को न्यायोचित ठहराया जा सके । इसी प्रकार, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन न्यायालय में निहित विवेकाधिकार का प्रयोग भी सतर्कतापूर्वक और प्रज्ञा से किया जाना चाहिए । इससे बाहर जाकर शक्ति का प्रयोग करना और विधान-मंडल द्वारा प्रदत्त व्यापक शक्ति और विवेकाधिकार को स्व-अधिरोपित परिसीमाओं के अधीन करना अनावश्यक है ।

25.9 अग्रिम जमानत अनुदत्त या इनकार करने के लिए कोई अनम्य मार्गदर्शक सिद्धांत या कठोर सूत्र का उपबंध नहीं किया जा सकता है क्योंकि भविष्य की सभी परिस्थितियों और स्थितियों की अग्रिम जमानत अनुदत्त करने या इनकार करने के लिए स्पष्ट रूप से कल्पना नहीं की जा सकती है । विधायी आशय के अनुरूप, अग्रिम जमानत अनुदत्त करना या इनकार करना आवश्यक रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करना चाहिए ।"

75. **सुधीर** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की पीठ के विनिश्चय में **बिपिन भदरेश सेठ** (उपर्युक्त) वाले मामले में विनिश्चय का उल्लेख किया था और इसका अननुमोदन नहीं किया था । तथापि, इस न्यायालय ने इस बात को देखते हुए अनुतोष नहीं दिया था कि आरंभ में अग्रिम जमानत अस्वीकार कर दी गई थी और उच्च न्यायालय में किए गए आवेदन को प्रत्याहृत कर लिया गया था और इसके पश्चात् एक द्वितीय अग्रिम जमानत अनुदत्त कर दी गई थी । उच्च न्यायालय ने अनुदत्त किए गए अनुतोष को रद्द कर दिया था । इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण की अभिपुष्टि की थी । उस निर्णय में, धारा 439(2) के अधीन शक्ति की परिधि पर विचार करते हुए **बिपिन भदरेश सेठ** (उपर्युक्त) वाले मामले का उल्लेख किया गया था । **अरविंद तिवारी** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में के एक

---

[1] (2016) 1 एस. सी. सी. 146.

[2] (2018) 8 एस. सी. सी. 475.

अन्य विनिश्चय में विवाद्यक यह था कि क्या कतिपय शर्तों के अध्यधीन पूर्व में अनुदत्त की गई अग्रिम जमानत, जिस पर इस न्यायालय द्वारा विचार किया गया था, रद्द की जा सकती है या नहीं । शर्तों में, अन्य बातों के साथ-साथ, यह सम्मिलित था कि राशियां बैंक प्रत्याभूति द्वारा प्रतिभूत की जानी थी । व्यथित निगम को निदेश दिया गया था कि प्रत्येक अभियुक्त की बाबत विनिर्दिष्ट "गबन की गई राशि" ऐसी प्रत्याभूति के माध्यम से प्रत्याभूत की जाए । इस मांग का अनुपालन करने में असफल रहने पर, रद्दकरण के आदेश की ईप्सा की गई । इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि इस पूर्वानुमान के आधार पर कि आवेदक दोषी हैं, रद्दकरण का आश्रय नहीं लिया जा सकता था । इसी प्रकार, **महंत चांद योगी** बनाम **हरियाणा राज्य**[1], **पदमाकर तुकाराम भावनागरे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2], **एक्स** बनाम **तेलंगाना राज्य**[3] तथा कतिपय अन्य निर्णयों में इसी प्रकार के मत व्यक्त किए गए थे ।

76. जब तक अभियुक्त के व्यवहार– उसके न्याय से भागने, या न्यायालय के प्राधिकार या अधिकारिता की अपवंचना करने, या उसके द्वारा साक्षियों को अभित्रस्त करने, या उन्हें अभित्रस्त करने की कोशिश करने, या अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय अधिरोपित किसी शर्त का अतिक्रमण करने का सुझाव देने वाली परिस्थितियां प्रतिकूल न हों, विधि ऐसे व्यक्ति से उस पर विचारण के लिए समन तामील होने के उपरांत न्यायालय में अभ्यर्पण करने की अपेक्षा नहीं करती है । अधिरोपित की गई शर्तों की अनुपालना के अधीन रहते हुए, किसी व्यक्ति को दी गई अग्रिम जमानत विचारण की समाप्ति तक जारी रह सकती है । यह इस पीठ को निर्देशित प्रश्न सं. 2 का उत्तर है ।

77. यह न्यायालय निर्देश का निम्नलिखित उत्तर देता है :–

(1) प्रश्न सं. 1 के संबंध में, यह अभिनिर्धारित किया जाता है

---

[1] (2003) 1 एस. सी. सी. 236.

[2] (2012) 13 एस. सी. सी. 720

[3] (2018) 16 एस. सी. सी. 511.

कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई संरक्षा सदैव या सामान्यतया एक नियत अवधि के लिए सीमित नहीं की जानी चाहिए; यह अभियुक्त के पक्ष में समय के बारे में किसी निर्बंधन के बिना लागू रहनी चाहिए । धारा 438(2) के साथ पठित धारा 437(3) के अधीन प्रायिक या मानक शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिएं; यदि किसी अपराध या दोष के संबंध में विचित्र विशेषताएं (जैसे गंभीरता या घोरता आदि) हैं, तो न्यायालय कोई समुचित शर्त (जिसमें राहत की नियत प्रकृति, या इसका किसी घटना से बंधा होना या समयाबद्ध होना आदि सम्मिलित है) अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र है ।

(2) इस न्यायालय को निर्देशित द्वितीय प्रश्न का उत्तर यह अभिनिर्धारित करते हुए दिया जाता है कि अग्रिम जमानत की कालावधि साधारणतया उस समय और प्रक्रम पर समाप्त नहीं हो जाती है जब न्यायालय द्वारा अभियुक्त को समन किया जाता है, या आरोप विरचित करने के पश्चात्, अपितु विचारण की समाप्ति तक भी जारी रह सकती है । तथापि, यदि ऐसी विशेष या विचित्र विशेषताएं हैं जिनमें न्यायालय के लिए अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करना आवश्यक है, तो न्यायालय ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है ।

78. उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट किया जाता है कि न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आवेदनों पर विचार करते हुए निम्नलिखित बातों को मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में ध्यान में रखना चाहिए :-

(क) जैसा कि **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया गया है, जब किसी व्यक्ति को गिरफ्तारी की आशंका है और अग्रिम जमानत के लिए न्यायालय में समावेदन करता है, तो उसकी आशंका (गिरफ्तारी की) किसी विनिर्दिष्ट अपराध या विशिष्ट अपराधों से संबंधित सटीक तथ्यों (और न कि अस्पष्ट या साधारण अभिकथनों) पर आधारित होनी चाहिए । अग्रिम जमानत के लिए आवेदनों में अपराध से संबंधित स्पष्ट और

आवश्यक तथ्य और आवेदक या आवेदिका को क्यों अपनी गिरफ्तारी की युक्तियुक्त रूप से आशंका है, तथा उसके तथ्यों का वृत्तांत अंतर्विष्ट होने चाहिएं । ये तथ्य उस न्यायालय के लिए महत्वपूर्ण हैं जो आवेदन, भय या आशंका की सीमा और युक्तियुक्तता, इसकी घोरता या गंभीरता और किसी शर्त की समुचितता पर विचार कर रहा है जो अधिरोपित की जा सकती है । यह एक आवश्यक शर्त नहीं है कि आवेदन केवल प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने के पश्चात् किया जाए; यह पहले किया जा सकता है जबकि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो ।

(ख) न्यायालय, जिसके समक्ष धारा 438 के अधीन आवेदन फाइल किया जाता है, भय (गिरफ्तारी के) की गंभीरता पर निर्भर करते हुए सावधानी के अध्युपाय के रूप में लोक अभियोजक को, यहां तक कि सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय भी, सूचना जारी कर सकता है और तथ्य अभिप्राप्त कर सकता है ।

(ग) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 न्यायालयों को प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल हो जाने, या अन्वेषण या जांच आदि के दौरान पुलिस द्वारा किसी साक्षी का कथन अभिलिखित किए जाने पर राहत को समय के रूप में सीमित करने के लिए शर्तें अधिरोपित करने के लिए बाध्य या आबद्ध नहीं करती हैं । आवेदन (अग्रिम जमानत अनुदत्त करने के लिए) पर मनन और विचार करते समय न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, उसके द्वारा अन्वेषण के अनुक्रम पर प्रभाव डालने या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने (साक्षियों को अभित्रस्त करने सहित) की संभाव्यता, न्याय से भागने (जैसे कि देश छोड़ना) की संभाव्यता आदि पर विचार करना होता है । न्यायालयों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(3) में उल्लिखित शर्तें [धारा 438(2) के फलस्वरूप] अधिरोपित करना न्यायोचित होगा और अधिरोपित करनी चाहिए । अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित करने की

आवश्यकता पर मामला-दर-मामला आधार पर और राज्य या अन्वेषक अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री पर निर्भर करते हुए विचार किया जाएगा । ऐसी विशेष या अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित की जा सकेंगी यदि मामले या मामलों में आवश्यकता हो, किंतु सभी मामलों में नैमित्तिक रीति में अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं । इसी प्रकार, ऐसी शर्तें जो अग्रिम जमानत को सीमित करती हों, अधिरोपित की जा सकती हैं यदि किसी मामले या मामलों के तथ्यों में वे अपेक्षित हों, तथापि, ऐसी सीमित करने वाली शर्तें अनिवार्य रूप से अधिरोपित नहीं की जा सकेंगी ।

(घ) न्यायालयों को यह निर्धारण करते समय कि अग्रिम जमानत अनुदत्त की जाए या इससे इनकार किया जाए, अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक द्वारा निभाई गई भूमिका और मामले के तथ्यों जैसी बातों से साधारणतया मार्गदर्शित होना चाहिए । जमानत अनुदत्त की जाए या नहीं, एक विवेकाधिकार का विषय है; समान रूप से, क्या किसी प्रकार की विशेष शर्तें अधिरोपित की जानी हैं (या अधिरोपित नहीं की जानी हैं) और यदि अधिरोपित की जानी हैं तो यह मामले के तथ्यों पर निर्भर करती हैं और न्यायालय के विवेकाधिकार के अध्यधीन होती हैं ।

(ङ) अनुदत्त की गई अग्रिम जमानत अभियुक्त के आचरण और व्यवहार पर निर्भर करते हुए आरोप पत्र फाइल होने के पश्चात् विचारण की समाप्ति तक जारी रह सकती है । साथ ही, अग्रिम जमानत के आदेश सर्वग्राही नहीं होने चाहिएं, जिसका अर्थ यह है कि ऐसे आदेश से अभियुक्त इस बात के लिए समर्थ नहीं होना चाहिए कि वह आगे अपराध कारित करे और राहत का दावा न करे । यह केवल उसी अपराध या घटना तक सीमित होना चाहिए जिस किसी विनिर्दिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका की गई है । यह आदेश किसी ऐसी भावी घटना के संबंध में लागू नहीं हो सकता है जिसमें किसी अपराध का कारित होना अंतर्वलित हो ।

(च) अग्रिम जमानत के आदेशों से किसी रीति में पुलिस या अन्वेषक अभिकरण के उस व्यक्ति के विरुद्ध आरोपों का अन्वेषण

करने के अधिकार या कर्तव्य परिसीमित या निर्बंधित नहीं होते हैं, जिसने गिरफ्तारी-पूर्व जमानत की ईप्सा की है और अनुदत्त की गई है ।

(छ) अन्वेषण करने वाले प्राधिकारी की अपेक्षाओं को सुकर बनाने के लिए "सीमित अभिरक्षा" या "समझी गई अभिरक्षा" के संबंध में सिब्बिया वाले मामले में की गई मताभिव्यक्तियां, किसी ऐसी वस्तु की बरामदगी या किसी तथ्य के पता चलने की स्थिति में जो ऐसी घटना के दौरान किए गए कथन अर्थात् (समझी गई अभिरक्षा) से संबंधित है, धारा 27 के उपबंधों को पूरा करने के लिए प्रयोजनों के लिए पर्याप्त होंगी । ऐसी स्थिति में, अभियुक्त को अलग से अभ्यर्पण करने और नियमित जमानत की ईप्सा करने के लिए कहने का कोई प्रश्न (या आवश्यकता) नहीं है । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि "यदि और जब अवसर उद्भूत होता है अभियोजन पक्ष के लिए उत्तर प्रदेश राज्य बनाम देवमन उपाध्याय वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा उल्लिखित सिद्धांत का अवलंब लेकर जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में पता चले तथ्यों के संबंध में साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के फायदे का दावा करना संभव हो सकेगा ।"

(ज) पुलिस या अन्वेषक अभिकरण किसी निबंधन का अतिक्रमण जैसे कि फरार होने, अन्वेषण के दौरान असहयोग, प्रवंचना करना, अन्वेषण या विचारण के परिणाम को प्रभावित करने की दृष्टि से साक्षियों को अभित्रस्त या उत्प्रेरित करना आदि की स्थिति में अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए धारा 439(2) के अधीन निदेश के लिए उस संबंधित न्यायालय में समावेदन करने के लिए स्वतंत्र है, जिसने प्रथम बार में अग्रिम जमानत अनुदत्त की थी । इस संदर्भ में न्यायालय–वह न्यायालय है जो प्रचलित नज़ीरों के अनुसार प्रथम बार में अग्रिम जमानत अनुदत्त करता है ।

(झ) राज्य या अन्वेषक अभिकरण की प्रेरणा पर अपीली या

वरिष्ठ न्यायालय द्वारा जमानत अनुदत्त करने वाले आदेश की शुद्धता पर विचार किया जा सकता है और इसे इस आधार पर अपास्त किया जा सकता है कि जमानत अनुदत्त करने वाले न्यायालय ने तात्विक तथ्यों या निर्णायक परिस्थितियों पर विचार नहीं किया था । **(प्रकाश कदम और आदि-आदि** बनाम **रामप्रसाद विश्वनाथ गुप्ता और एक अन्य**[1]**, जय प्रकाश सिंह, राज्य, केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो की मार्फत** बनाम **अमरमणि त्रिपाठी**[2] वाले मामले देखें) यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 439(2) के निबंधनों के अनुसार "रद्दकरण" करने की कोटि में नहीं आता है ।

(ञ) महत्रे वाले मामले के निर्णय (और अन्य इसी प्रकार के विनिश्चयों) जिनमें यह अभिनिर्धारित किया गया है कि अग्रिम जमानत अनुदत्त करते समय निर्बंधनकारी शर्तें कतई अधिरोपित नहीं की जा सकती हैं, को उलटा जाता है । इसी प्रकार, सलाउद्दीन वाले मामले में के विनिश्चय और पश्चात्वर्ती विनिश्चयों (के. एल. वर्मा, निर्मलजीत कौर वाले मामले सहित) को, जिनमें यह कहा गया है कि ऐसी निर्बंधनकारी शर्तें या निबंधन जो अग्रिम जमानत को एक समयावधि तक सीमित करती है, उलटा जाता है ।

79. निष्कर्षत:, स्वयं को यह स्मरण कराना उपयोगी होगा कि अधिकार जो नागरिक गहराई से संजोए हैं, मूलभूत हैं – निर्बंधन मूलभूत नहीं हैं । जोसफ स्टोरी, महान विधिवेत्ता और यूएस सुप्रीम कोर्ट के न्यायाधीश की यह टिप्पणी है कि "दैहिक सुरक्षा और प्राइवेट संपत्ति संपूर्ण रूप से बुद्धिमानी, स्थिरता और न्यायालय की सत्यनिष्ठा पर निर्भर करती है ।"

80. हमारे गणराज्य के इतिहास – और वास्तव में, स्वाधीनता आंदोलन ने दिखाया कि मनमानी गिरफ्तारी की संभावना और अनिश्चित काल तक निरोध तथा रक्षापायों की कमी कैसे स्वतंत्रता की मांग के लिए लोगों को एकजुट करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं । रॉल्ट ऐक्ट को

---

[1] (2011) 6 एस. सी. सी. 189.

[2] (2005) 8 एस. सी. सी. 21.

देखकर इसके विरुद्ध जो राष्ट्रव्यापी विरोध हुआ, जलियांवाला बाग नरसंहार और कई अन्य घटनाएं हुईं, जहां आम जनता विरोध करने के अपने अधिकार का पयोग कर रही थी, किंतु उसे बर्बरतापूर्वक दबा दिया गया और लोगों को लंबे समय के लिए जेल में डाल दिया गया । बहुत बार नागरिकों को तंग और अपमानित करने के लिए, और अक्सर शक्तिशाली व्यक्तियों के हित में मनमानी और दमनकारी गिरफ्तारियों के भय (और अपराधों में कोई सार्थक अन्वेषण न करने) के कारण धारा 438 का अधिनियमन किया गया । विधि आयोग की कई रिपोर्टों और कई समितियों तथा आयोगों की सिफारिशों के बावजूद मनमानी और निराधार गिरफ्तारियां एक व्यापक गोचर विषय के रूप में जारी रहीं । संसद् ने गिरफ्तारी-पूर्व या अग्रिम जमानत अनुदत्त करने में न्यायालय की शक्ति या विवेकाधिकार को, विशेष रूप से जमानत की अवधि के संबंध में, या जब तक आरोप पत्र फाइल किया जाता है, या गंभीर अपराधों में, कम करना उचित नहीं समझा था । अत: यह समाज के बृहत्तर हित में नहीं होगा यदि यह न्यायालय न्यायिक निर्वचन द्वारा इस शक्ति के प्रयोग को परिसीमित करे । ऐसी कवायद का खतरा यह होगा कि विवेकाधिकार, जिसे सोच-समझकर व्यापक रखा गया है, टुकड़ों में, थोड़ा-थोड़ा करके, एक अति संकुचित और अमान्यताप्राप्त रूप में बहुत छोटे भाग तक सिकुड़ कर रह जाएगा और इस प्रकार इस उपबंध के पीछे का वह उद्देश्य विफल हो जाएगा जो इन 46 वर्षों में समय की कसौटी पर खरा उतरा है ।

81. तद्द्वारा निर्देश का उपरोक्त निबंधनों के अनुसार उत्तर दिया जाता है ।

निर्देश का उत्तर दिया गया ।

न्या. अरुण मिश्रा, न्या. इंदिरा बनर्जी और न्या. विनीत सरन – हमने न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट के प्रारूपों को देखा है और उनसे सहमत हैं । चूंकि दोनों के बीच कोई राय की भिन्नता नहीं है, हम न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट की इस तर्कणा से सहमत हैं कि **श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया और अन्य** बनाम **पंजाब राज्य**[1] वाले मामले में के निष्कर्षों को दोहराने की आवश्यकता है और यह भी कि **सलाउद्दीन अब्दुलसामद शेख** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 का जिस निर्बंधित रीति में निर्वचन किया गया है, वह गलत है । अत: हम सहमत हैं कि **सलाउद्दीन** (उपर्युक्त) वाले मामले और अन्य मामले जिनमें इसका अनुसरण किया है, उलटे जाने की आवश्यकता है । इसी प्रकार, **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[3] वाले मामले में किया गया व्यापक निर्वचन, अर्थात् यह कि अग्रिम जमानत का आदेश अनुदत्त करते समय कोई शर्तें अधिरोपित नहीं की जा सकती हैं, गलत है । इस सीमा तक **महत्रे** (उपर्युक्त) वाले मामले को और उन अन्य निर्णयों को, जिनमें इसका अनुसरण किया गया है, तद्नुसार उलटा जाता है ।

उक्त निष्कर्षों को देखते हुए, हम बृहत्तर पीठ को किए गए निर्देश के उत्तरों से सहमत हैं ।

अंतिम निष्कर्ष :–

न्यायमूर्ति एम. आर. शाह और न्यायमूर्ति एस. रविन्द्र भट के विसम्मत निर्णयों से न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा, न्यायमूर्ति बनर्जी और न्यायमूर्ति विनीत सरन की उनसे सहमति को देखते हुए, निर्देश के निम्नलिखित उत्तर उपवर्णित किए जाते हैं :–

(1) प्रश्न सं. 1 के संबंध में, यह न्यायालय अभिनिर्धारित करता है कि किसी व्यक्ति को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन प्रदान की गई संरक्षा को अनिवार्य रूप से एक नियम अवधि के लिए सीमित नहीं किया जाना चाहिए; यह समय के किसी

---

[1] [1981] 1 उम. नि. प. 1231 = (1980) 2 एस. सी. सी. 565.

[2] (1996) 1 एस. सी. सी. 667.

[3] (2011) 1 एस. सी. सी. 694.

निर्बंधन के बिना अभियुक्त के पक्ष में लागू होनी चाहिए । धारा 438(2) के साथ पठित धारा 437(3) के अधीन की प्रसामान्य शर्तें अधिरोपित की जानी चाहिएं; यदि किसी अपराध के संबंध में विनिर्दिष्ट तथ्य और विशेषताएं हैं, तो न्यायालय कोई समुचित शर्त (इसके अंतर्गत राहत की नियत प्रकृति, या इसका किसी घटना से जुड़ा होना भी है) आदि अधिरोपित करने के लिए स्वतंत्र है ।

(2) जहां तक इस न्यायालय को निर्देशित द्वितीय प्रश्न का संबंध है, यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि अग्रिम जमानत के आदेश कालावधि या अवधि का अंत प्रसामान्यत: उस समय और प्रक्रम पर नहीं हो जाता है जब अभियुक्त को न्यायालय द्वारा समन किया जाता है, या जब आरोप विरचित किए जाते हैं, अपितु विचारण के अंत तक जारी रह सकती है । इसके अतिरिक्त, यदि कोई विशेष या विलक्षण विशेषताएं हैं जिनमें न्यायालय के लिए अग्रिम जमानत की अवधि को सीमित करना आवश्यक है, तो वह ऐसा करने के लिए स्वतंत्र है ।

1. यह न्यायालय, उपरोक्त दो निर्णयों में की गई चर्चा को ध्यान में रखते हुए, और निर्देश के उत्तरों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट करता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 के अधीन आवेदनों पर विचार करते समय न्यायालयों द्वारा निम्नलिखित बातें ध्यान में रखे जाने की आवश्यकता है :–

(1) श्री गुरबक्श सिंह सिब्बिया और अन्य **बनाम** पंजाब राज्य वाले मामले में के निर्णय के संगत, जब कोई व्यक्ति गिरफ्तारी की आशंका की शिकायत करता है और आदेश के लिए समावेदन करता है, तो आवेदन एक या अन्य विनिर्दिष्ट अपराध से संबंधित ठोस तथ्यों पर (न कि अस्पष्ट या साधारण अभिकथनों पर) आधारित होना चाहिए । अग्रिम जमानत की ईप्सा करने वाले आवेदन में अपराध से संबंधित केवल आवश्यक तथ्य, और आवेदक को क्यों गिरफ्तारी की युक्तियुक्त रूप से आशंका है, तथा उसके पक्ष का वृत्तांत अंतर्विष्ट होने चाहिएं । ये न्यायालय के लिए आवश्यक हैं जिसे उसके आवेदन पर भय या आशंका, इसकी घोरता या गंभीरता और किसी ऐसी शर्त जो अधिरोपित की जा सकती है के औचित्य

का मूल्यांकन करने के लिए विचार करना चाहिए । यह आवश्यक नहीं है कि आवेदन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल किए जाने के पश्चात् ही किया जाए; यह आवेदन पहले भी किया जा सकता है बशर्ते कि तथ्य स्पष्ट हों और गिरफ्तारी की आशंका करने के लिए युक्तियुक्त आधार हो ।

(2) न्यायालय, जिसे धारा 438 के अधीन आवेदन के साथ समावेदन किया जाता है, के लिए उपयुक्त हो सकेगा कि (गिरफ्तारी के) भय की गंभीरता पर निर्भर करते हुए, यहां तक कि सीमित अंतरिम अग्रिम जमानत प्रदान करते हुए भी, लोक अभियोजक को सूचना जारी करे और तथ्यों को अभिप्राप्त करे ।

(3) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 438 में ऐसी कोई बात नहीं है जो न्यायालयों को राहत को समय से रूप में, या प्रथम इत्तिला रिपोर्ट फाइल होने, या पुलिस द्वारा किसी साक्षी का कथन अभिलिखित होने के उपरांत, अन्वेषण या जांच आदि के दौरान की बात को लेकर सीमित करने के लिए शर्तें अधिरोपित करने के लिए बाध्य या आबद्ध करती हो । आवेदन (अग्रिम जमानत प्रदान करने के लिए) पर विचार करते समय न्यायालय को अपराध की प्रकृति, व्यक्ति की भूमिका, अन्वेषण की प्रक्रिया को उसके द्वारा प्रभावित करने या साक्ष्य के साथ छेड़छाड़ करने (साक्षियों को अभित्रस्त करने सहित) की संभावना, न्याय से भागने (जैसे कि देश छोड़ना) आदि की संभावना पर विचार करना चाहिए । न्यायालयों के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437(3) में वर्णित शर्तें [धारा 438(2) के फलस्वरूप] अधिरोपित करना न्यायोचित होगा और करनी चाहिएं । अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित करने की आवश्यकता को मामला-दर-मामला आधार पर और राज्य या अन्वेषक अभिकरण द्वारा प्रस्तुत की गई सामग्री पर निर्भर करते हुए आंका जाना होगा । ऐसी विशेष या अन्य निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित की जा सकेंगी यदि मामले या मामलों में आवश्यक हो, किंतु सभी मामलों में नैत्यिक रीति में अधिरोपित नहीं की जानी चाहिएं । इसी तरह, ऐसी शर्तें, जो अग्रिम जमानत को सीमित करती हों, अधिरोपित की जा सकेंगी, यदि किसी मामले या किन्हीं मामलों के तथ्यों में वे

आवश्यक हैं; तथापि, सीमित करने वाली ऐसी शर्तें अनिवार्य रूप से अधिरोपित नहीं की जा सकेंगी ।

(4) न्यायालयों को इस बात पर विचार करते समय कि अग्रिम जमानत प्रदान की जाए या इसे इनकार किया जाए, साधारणतया अपराधों की प्रकृति और गंभीरता, आवेदक की समझी जा सकने वाली भूमिका, और मामले के तथ्यों जैसी बातों द्वारा मार्गदर्शित होना चाहिए । जमानत प्रदान की जाए या नहीं, यह एक विवेकाधिकार का विषय है; समान रूप से यदि जमानत प्रदान की जाती है तो किस प्रकार की विशेष शर्तें अधिरोपित की जानी है (या नहीं की जानी हैं) मामले के तथ्यों पर निर्भर है और न्यायालय के विवेकाधिकार के अध्यधीन है ।

(5) प्रदान की गई अग्रिम जमानत अभियुक्त के आचरण और व्यवहार पर निर्भर करते हुए आरोप पत्र फाइल होने के पश्चात् से विचारण के अंत तक जारी रह सकती है ।

(6) अग्रिम जमानत का आदेश इस अर्थ में "सर्वग्राही" नहीं होना चाहिए कि इस आदेश से अभियुक्त आगे अपराध कारित करने में समर्थ नहीं होगा और गिरफ्तारी से अनिश्चित काल के लिए संरक्षा के अनुतोष का दावा करने में समर्थ नहीं होगा । यह आदेश उस अपराध या घटना तक सीमित रहना चाहिए, जिस किसी विनिर्दिष्ट घटना के संबंध में गिरफ्तारी की आशंका की ईप्सा की गई है । यह उस भावी घटना के संबंध में लागू नहीं हो सकता है जिसमें अपराध का कारित होना अंतर्वलित है ।

(7) अग्रिम जमानत के आदेश से पुलिस या अन्वेषक अभिकरण के उस व्यक्ति के विरुद्ध आरोपों का अन्वेषण करने के अधिकार और कर्तव्य सीमित या निर्बंधित नहीं होते हैं जिसने गिरफ्तारी-पूर्व जमानत की ईप्सा की है और प्रदान की गई है ।

(8) सिब्बिया वाले मामले में अन्वेषणकारी प्राधिकारी की अपेक्षाओं को सुकर बनाने के लिए "सीमित अभिरक्षा" या "समझी गई अभिरक्षा के संबंध में की गई मताभिव्यक्तियां, किसी ऐसी वस्तु की बरामदगी या किसी तथ्य के पता चलने की स्थिति में,

जिसका संबंध ऐसी स्थिति (अर्थात् समझी गई अभिरक्षा) के दौरान किए गए कथन से है, धारा 27 के उपबंधों को पूर्ण करने के प्रयोजन के लिए पर्याप्त होंगी । ऐसी स्थिति में, अभियुक्त से अलग से अभ्यर्पण करने और नियमित जमान की ईप्सा करने के लिए कहने का कोई प्रश्न (या आवश्यकता) नहीं है । **सिब्बिया** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया था कि "यदि और जब अवसर उद्भूत हो, अभियोजन पक्ष के लिए उन तथ्यों के पता चलने के संबंध में, साक्ष्य अधिनियम की धारा 27 के फायदे का दावा करना संभव हो सकेगा जो उत्तर प्रदेश राज्य **बनाम** देवमन उपाध्याय वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा कथित सिद्धांत का अवलंब लेकर जमानत पर छोड़े गए व्यक्ति द्वारा दी गई जानकारी के अनुसरण में पता चलता है ।"

(9) पुलिस या अन्वेषक अभिकरण इस बात के लिए स्वतंत्र है कि वह अभियुक्त के फरार होने, अन्वेषण के दौरान सहयोग न करने, अन्वेषण या विचारण आदि के परिणाम को प्रभावी करने की दृष्टि से साक्षियों के अपवंचन, अभित्रास या उत्प्रेरण करने जैसे किसी निबंधन का अतिक्रमण करने की स्थिति में अभियुक्त को गिरफ्तार करने के लिए धारा 439(2) के अधीन निदेश लेने के लिए उस संबंधित न्यायालय में समावेदन कर सकता है जिस न्यायालय ने अग्रिम जमानत प्रदान की है ।

(10) पैरा 9 में निर्दिष्ट न्यायालय वह न्यायालय है जो प्रथम बार में, विद्यमान नजीरों के अनुसार, अग्रिम जमानत प्रदान करता है ।

(11) जमानत प्रदान करने वाले आदेश की शुद्धता पर राज्य या अन्वेषक अभिकरण की प्रेरणा पर अपील या वरिष्ठ न्यायालय द्वारा विचार किया जा सकता है और इसे इस आधार पर अपास्त किया जा सकता है कि इसे प्रदान करने वाले न्यायालय ने तात्विक तथ्यों या निर्णायक परिस्थितियों पर विचार नहीं किया था । (**प्रकाश कदम और आदि** बनाम **रामप्रसाद विश्वनाथ गुप्ता और अन्य**[1], **जय प्रकाश सिंह, राज्य मार्फत केंद्रीय अन्वेषण ब्यूरो** बनाम **अमरमणि त्रिपाठी**[2] वाले मामले देखें) यह दंड प्रक्रिया संहिता की

---

[1] (2011) 6 एस. सी. सी. 189.

[2] (2005) 8 एस. सी. सी. 21.

धारा 349(2) के निबंधनों के अनुसार "रद्दकरण" की कोटि में नहीं आता है ।

(12) **सिद्धाराम सतलिंगप्पा महत्रे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाले मामले और इसी प्रकार के अन्य निर्णयों में की गई इन मताभिव्यक्तियों को, कि अग्रिम जमानत प्रदान करते समय कतई कोई निर्बंधनकारी शर्तें अधिरोपित नहीं की जा सकती हैं, तद्द्वारा उलटा जाता है । इसी तरह, (**सलाउद्दीन अब्दुलसामद** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2], **के. एल. वर्मा** बनाम **राज्य और एक अन्य**[3] **सुनीता देवी** बनाम **बिहार राज्य और एक अन्य**[4] **अदरी धरन दास** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[5] **निर्मलजीत कौर** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य और एक अन्य**[6] **एचडीएफसी बैंक लिमिटेड** बनाम **जे. जे. मेनन**[7] **सतपाल सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[8] और **नरेश कुमार यादव** बनाम **रविन्द्र कुमार**[9] वाले मामलों सहित), जिनमें ऐसी निर्बंधनकारी शर्तें या अग्रिम जमानत को एक समयावधि के लिए प्रदान करने तक सीमित करते हुए निबंधन अधिकथित किए गए हैं, तद्द्वारा उलटे जाते हैं ।

2. निर्देश का तद्द्वारा उपरोक्त निबंधनों के अनुसार उत्तर दिया जाता है ।

निर्देश का उत्तर दिया गया ।

जस.

---

[1] (2011) 1 एस. सी. सी. 694.

[2] (1996) 1 एस. सी. सी. 667.

[3] (1998) 9 एस. सी. सी. 348.

[4] (2005) 1 एस. सी. सी. 608.

[5] (2005) 4 एस. सी. सी. 303.

[6] (2004) 7 एस. सी. सी. 558.

[7] (2010) 1 एस. सी. सी. 679.

[8] (2018) 1 एस. सी. सी. ऑनलाइन (एस. सी. 415).

[9] (2008) 1 एस. सी. सी. 632.